श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जैनपरम्परा और यापनीयसंघ

(जैन संघों के इतिहास, साहित्य, सिद्धान्त और आचार की गवेषणा)

तृतीय खण्ड

भगवती-आराधना आदि सोलह ग्रन्थों की कर्तृपरम्परा

प्रो० (डॉ०) रतनचन्द्र जैन

पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष : संस्कृतविभाग
शा० हमीदिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय
भोपाल, म.प्र.

पूर्व रीडर : प्राकृत
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय
भोपाल, म.प्र.

सर्वोदय जैन विद्यापीठ, आगरा, उ० प्र०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ISBN 81 - 902788 - 0 - 0 (Set)
ISBN 81 - 902788 - 3 - 5 (Volume III)

सर्वोदय जैन विद्यापीठ ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क 1

जैनपरम्परा और यापनीयसंघ

तृतीय खण्ड

प्रो० (डॉ०) रतनचन्द्र जैन

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी

आगरा — 282002, उ० प्र०

दूरभाष : 0562 - 2852278

लिप्यङ्कन : समता प्रेस, भोपाल

मुद्रक : **दीप प्रिण्टर्स**

70ए, रामा रोड, इंडस्ट्रियल एरिया, कीर्ति नगर, नई दिल्ली-110015

दूरभाष : 09871196002

प्रथम संस्करण : वी० नि० सं० 2535, ई० 2009

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 500 रुपये

सर्वाधिकार : प्रो० (डॉ०) रतनचन्द्र जैन

JAINA PARAMPARĀ AURA YĀPANĪYA SAṄGHA
Vol. III
By Prof. (Dr.) Ratana Chandra Jaina

Published by
Sarvodaya Jaina Vidyāpīṭha
1/205, Professors' Colony
AGRA — 282002, U.P.

First Edition : 1000
Price : Rs. 500
© : Prof. (Dr.) Ratana Chandra Jaina

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

समर्पण

ईसोत्तर २०वीं-२१वीं शती के अद्भुत, अद्वितीय,
अतिलोकप्रिय दिगम्बरजैन मुनि परमपूज्य
आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज को,

जिनकी

प्रगाढ़ आगमश्रद्धा, तलस्पर्शी आगमज्ञान एवं
आगमनिष्ठचर्या ने इस पंचमकाल में मुनिपद को
प्रामाणिकता और श्रद्धास्पदता प्रदान की है,

जिनके

अलौकिक आकर्षण के वशीभूत हो अनगिनत
युवा-युवतियाँ भोगपथ का परित्याग कर
योगपथ के पथिक बन गये और निरन्तर बन रहे हैं,

जिनकी

वात्सल्यमयी दृष्टि, अर्त्तिहारिणी मुस्कान एवं
हित-मित-प्रिय वचन दर्शनार्थियों को
आनन्द के सागर में डुबा देते हैं,

जिनके

वात्सल्यप्रसाद का पात्र में भी बना हूँ तथा जिन्होंने
अनेक शुभ उत्तरदायित्व आशीर्वाद में प्रदान कर
मेरे जीवन के अन्तिम चरण को धर्मध्यान-केन्द्रित
बना दिया।

नमोऽस्तु।

गुरुचरणानुरागी
रतनचन्द्र जैन

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

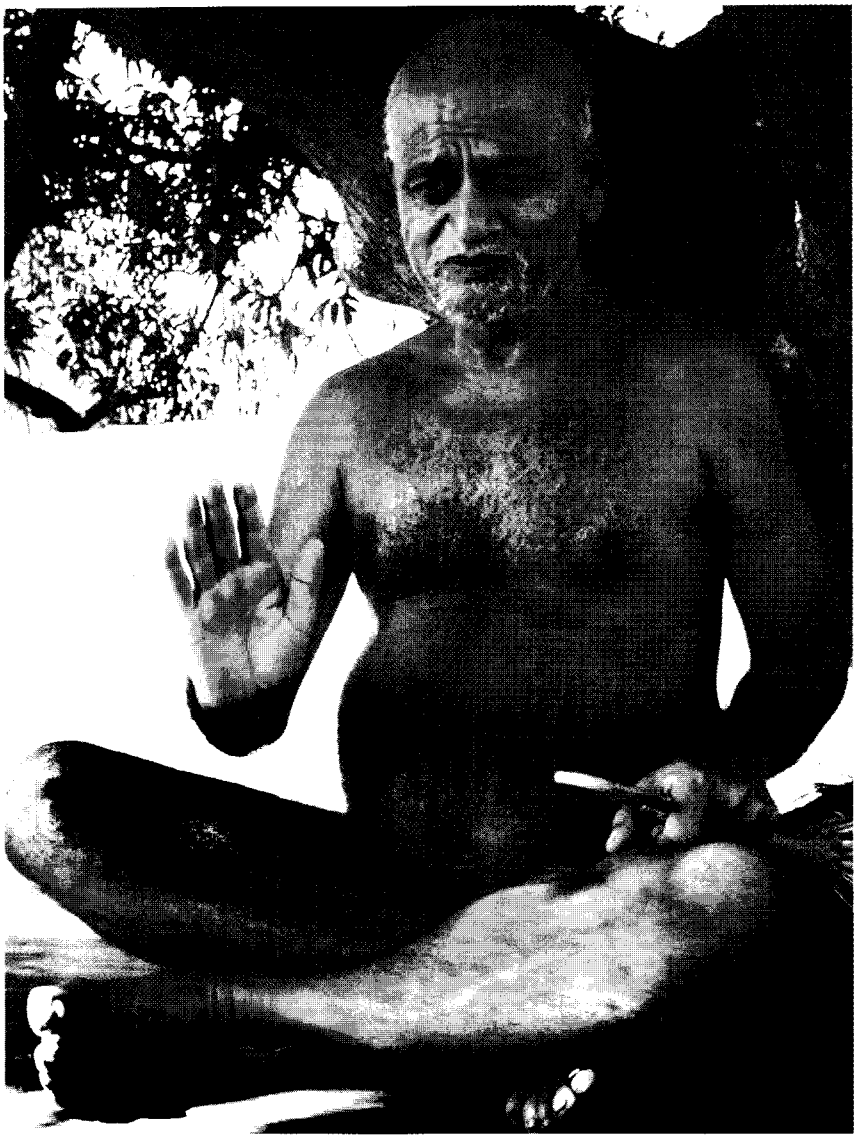

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.५. टीका में श्वेताम्बरमान्य सचेललिंग के दोषों का निरूपण १६
१.६. टीका में अचेललिंग से ही मोक्ष का प्रतिपादन १८
१.७. श्वेताम्बरीय मान्यताओं के आगमानुकूल होने का खण्डन २०
□ विवेचन का सार २३
२. स्त्रीमुक्तिनिषेध २४
२.१. वस्त्रत्याग के बिना संयतगुणस्थान संभव नहीं २४
२.२. वस्त्रत्याग से ही अपवादलिंगधारी की शुद्धि २५
२.३. पुरुषशरीर ही संयम का हेतु २५
२.४. किसी भी स्त्री के मुक्त होने का कथन नहीं २७
३. गृहिलिंग-परलिंग-मुक्तिनिषेध २९
४. केवलिभुक्ति-निषेध २९
५. परिग्रह की परिभाषा यापनीयमत-विरुद्ध— ३१
५.१. बाह्यपरिग्रह भी परिग्रह ३२
५.२. परिग्रहग्रहण देहसुख के लिए ३३
५.३. बाह्यपरिग्रह देहासक्ति का सूचक ३४
५.४. बाह्यपरिग्रह मूर्च्छा का निमित्त ३४
५.५. तीव्र कषाय से ही परिग्रह का ग्रहण ३५
५.६. परिग्रह से रागद्वेष की उदीरणा ३५
५.७. परिग्रही में लेश्या की विशुद्धि असम्भव ३६
५.८. वस्त्रादिपरिग्रह से हिंसा ३६
५.९. परिग्रह स्वाध्याय में बाधक ३७
५.१०. परिग्रहत्याग से रागद्वेष का त्याग ३७
५.११. परिग्रहत्याग परीषहजय का उपाय ३८
५.१२. परिग्रहत्याग से ध्यान-अध्ययन निर्विघ्न ३८
५.१३. मूर्च्छा, राग, इच्छा, ममत्व एकार्थक ३९
५.१४. अपरिग्रह-महाव्रत की वैकल्पिक परिभाषा नहीं ४०
६. वेदत्रय एवं वेदवैषम्य की स्वीकृति ४०
७. मायाचार के परिणाम के विषय में मतभेद ४२
८. गुणस्थानानुसार कर्मक्षय का निरूपण ४३
९. मूलगुणों और उत्तरगुणों का विधान ४९

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१०. लोच के ही द्वारा केशत्याग का नियम ४९
११. मांस, मधु और मद्य का सर्वथा निषेध ५१
१२. अभिग्रहविधान ५४
१३. भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द की गाथाएँ ५५
घ— दिगम्बरग्रन्थ होने के बहिरंग प्रमाण— ५५
१. सभी टीकाकार दिगम्बर ५५
२. दिगम्बराचार्यों के लिए प्रमाणभूत ५७
३. रचनाकाल यापनीय-संघोत्पत्तिपूर्व ५८

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६०

१. शिवार्य के गुरु दिगम्बर थे ६०
२. सर्वगुप्त के दिगम्बर होने का शिलालेखीय प्रमाण ६१
३. दिगम्बराचार्यों के भी नाम आर्यान्त और नन्द्यन्त ६२
४. अपराजित सूरि दिगम्बराचार्य थे ६३
५. भगवती-आराधना में श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाएँ नहीं ६४
६. श्वेताम्बर-यापनीय-समानपूर्वपरम्परा कपोलकल्पित ६६
७. 'आराधना' की गाथाएँ श्वेताम्बर ग्रन्थों में ६७
७.१. गुणस्थान-विकासवाद नितान्त कपोलकल्पित ६८
७.२. प्रकीर्णकों की रचना 'आराधना' के पश्चात् ६९
७.३. ग्रन्थ का बृहदाकार अर्वाचीनता का लक्षण नहीं ७०
७.४. वर्ण्यविषय की समानता रचनाकाल की समानता का लक्षण नहीं ७१
७.५. दिगम्बरीय-गाथाओं के श्वेताम्बरग्रन्थों में पहुँचने के प्रमाण ७२
७.६. परसाहित्यांश-ग्रहण से कर्तृत्व परिवर्तन नहीं ७५
८. 'आचेलक्कुद्देसिय' आराधना की मौलिक गाथा ७६
९. क्षपक के लिए मुनियों द्वारा आहार-आनयन अविरुद्ध ७८
१०. 'तालपलंबसुत्तम्मि' में 'कल्प' के सूत्र का उल्लेख नहीं ८१
११. दिगम्बरमुनि भी 'पाणितलभोजी' ८५
१२. मेतार्य मुनि की कथा लोककथा ८६
१३. 'विजहना-विधि' दिगम्बरपरम्परानुकूल ९१

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१४. भद्रबाहु-समाधिमरण बृहत्कथाकोश में ९४
१५. 'आचार', 'जीतकल्प' शास्त्रों के नाम नहीं ९५
१६. 'अनुयोगद्वार' शास्त्र का नाम नहीं ९९
१७. आवश्यकसूत्र की गाथा मूलग्रन्थ में उद्धृत नहीं १००
१८. आचारांगादि नाम दिगम्बरपरम्परा में भी प्रसिद्ध १०१
□ उपसंहार : दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण सूत्ररूप में १०२

तृतीय प्रकरण—भक्तप्रत्याख्यान में स्त्री के लिए नाग्न्यलिंग नहीं १०४

१. आगमोक्त दीक्षालिङ्ग ही भक्तप्रत्याख्यानलिङ्ग १०६
२. तदेव लिङ्ग १०६
३. प्राक्तन लिङ्ग १०७
४. आर्यिका के प्रसंग में विविक्त-अविविक्त स्थान का उल्लेख नहीं १०७
५. आर्यिका का अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग ही उपचार से सकल-परिग्रहत्यागरूप उत्सर्ग लिङ्ग १०८
६. आर्यिकाओं के प्रसंग में 'पुंसामिव योज्यम्' निर्देश भी नहीं १०८
७. 'पुंसामिव योज्यम्' का अभिप्राय १०९
८. अमहर्द्धिकादि श्राविकाओं के लिए सर्वत्र उत्सर्गलिङ्ग ११०
९. युक्तितः भी आगमविरुद्ध ११०
१०. पं० सदासुखदास जी को अस्वीकार्य १११

चतुर्दश अध्याय

अपराजितसूरि : दिगम्बर आचार्य

प्रथम प्रकरण—अपराजितसूरि के दिगम्बर होने के प्रमाण ११५

□ विजयोदयाटीका में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त— ११५
१. सवस्त्रमुक्ति का निषेध : तीर्थंकरों का अचेललिंग ही मोक्ष का एकमात्र उपाय ११५
१.१. सचेलत्व की मुक्ति-विरोधिता के अनेक हेतु ११९
१.१.१. दशधर्मपालन में बाधक ११९
१.१.२. संयमशुद्धि में बाधक १२०
१.१.३. इन्द्रियविजय में बाधक १२१

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.१.४. कषायविजय में बाधक १२१
१.१.५. ध्यानस्वाध्याय में बाधक १२२
१.१.६. आभ्यन्तरपरिग्रह-त्याग में बाधक १२२
१.१.७. रागद्वेष से मुक्त होने में बाधक १२३
१.१.८. शरीर के प्रति अनादरभाव में बाधक १२३
१.१.९. स्वाधीनता में बाधक १२३
१.१.१०.चित्तविशुद्धि के प्रकट होने में बाधक १२४
१.१.११.निर्भयता में बाधक १२४
१.१.१२.विश्रब्धता में बाधक १२४
१.१.१३.अप्रतिलेखना में बाधक १२५
१.१.१४.परिकर्म से मुक्त होने में बाधक १२५
१.१.१५.लाघव में बाधक १२६
१.१.१६.सचेलत्व तीर्थंकर-मार्गानुसरण में बाधक १२६
१.१.१७.बलवीर्य के प्रकटन में बाधक १२७
१.१.१८.अचेल ही निर्ग्रन्थ है १२७
१.२. किसी भी सचेल का निर्दोष रहना असंभव १२७
२. गृहस्थमुक्तिनिषेध १२८
३. परतीर्थिकमुक्ति-निषेध १३१
४. स्त्रीमुक्तिनिषेध १३२
५. अपरिग्रहमहाव्रत का लक्षण यापनीयमत-विरुद्ध १३६
६. केवलिभुक्तिनिषेध १३७
७. यापनीयमत-विरुद्ध अन्य सिद्धान्त १३८

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता १४१

१. मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग अमान्य १४१
१.१. सवस्त्रमुक्ति के घोर विरोधी १४२
१.२. सचेललिंगधारी के मुनि होने का निषेध १४३
१.३. परिग्रहधारी यति (संयत) नहीं १४४
१.४. वस्त्रधारी गृहस्थ ही वस्त्रधारी श्वेताम्बर साधु बनता है १४५
१.५. मुनिधर्म उत्सर्ग, श्रावकधर्म अपवाद १४६

१.६. विकल्प और अपवाद में अन्तर १४७
१.७. परिग्रहसहितलिंग अपवादलिंग १४८
१.८. प्रशस्तलिंगादिवालों का भी सचेललिंग अपवादलिंग १४९
१.९. परस्परसापेक्षता साध्यसाधकभाव के कारण १५१
१.१०. मुनि के अपवादलिंग में वस्त्रग्रहण का विधान नहीं १५१
२. श्वेताम्बर-आगमों का प्रामाण्य अस्वीकार्य १५४
२.१. सचेलमुक्ति का निषेध १५४
२.२. श्वेताम्बरागमों में वस्त्रग्रहण की अनुमति कारणापेक्ष, निर्दोषतापेक्ष नहीं १५५
२.३. श्वेताम्बरागम-वचनों का स्वीकरण और निरसन १५९
२.४. श्वेताम्बर-आगमों में अचेलता के उपदेश का हेतु : वस्त्रग्रहण की सदोषता १६२
२.५. श्वेताम्बरमान्य सचेलमुक्ति पर तीव्र प्रहार १६३
२.६. श्रुतसागरसूरि की भूल १६५
२.७. दिगम्बर-आगमों का प्रामाण्य स्वीकार्य १६७
३. कवलाहार-विषयक अवर्णवाद का उदाहरण अनावश्यक १६८
४. दिगम्बर-चन्द्रनन्दी यापनीय-चन्द्रनन्दी से भिन्न १६९
५. दिगम्बर-दशवैकालिक श्वेताम्बर-दशवैकालिक से भिन्न १७०
६. काणूर् या क्राणूर् दिगम्बर-मूलसंघ का ही गण १७२
७. रात्रिभोजनत्यागव्रत दिगम्बरमत में भी मान्य १७३
८. अथालन्दसंयमादि दिगम्बरमान्य १७५
— श्वेताम्बरग्रन्थों में अथालन्दकादि का स्वरूप १७५
— विजयोदयाटीका में अथालन्दकादि का स्वरूप १७६
— दोनों में विरोध १७८
९. भिक्षुप्रतिमाएँ दिगम्बरमतानुकूल १८१
१०. सात घरों से भिक्षा दिगम्बरमतानुकूल १८३
११. पुरुषवेदादि का पुण्यप्रकृतित्व दिगम्बराचार्यों को भी मान्य १८५
१२. प्रथम शुक्लध्यान दिगम्बरमतानुकूल १८८
□ उपसंहार : दिगम्बराचार्य होने के प्रमाण सूत्ररूप में १८९

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पञ्चदश अध्याय

मूलाचार

प्रथम प्रकरण—मूलाचार के दिगम्बर ग्रन्थ होने के प्रमाण १९३
क— मूलाचार का महत्त्व १९३
ख— मूलाचार संग्रहग्रन्थ नहीं १९६
ग — यापनीय ग्रन्थ होने की नई उद्भावना : समर्थक हेतु १९७
घ- सभी हेतु असत्य १९८
ङ— दिगम्बरग्रन्थ होने के अन्तरंग प्रमाण : यापनीयमत विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन— १९८
१. सवस्त्रमुक्ति अमान्य १९८
१.१. आचेलक्य मुनि का मूलगुण १९८
१.२. आचेलक्य के बिना संयतगुणस्थान असंभव २००
१.३. सर्वांग-निर्वस्त्रता ही अचेलता और निर्ग्रन्थता २००
१.४. आचेलक्य का अर्थ अल्पचेलत्व नहीं २००
१.५. आचेलक्य चारित्र का साधन २०१
१.६. निर्ग्रन्थ को ही निर्वाण की प्राप्ति २०२
२. यापनीय-अमान्य २८ मूलगुणों का विधान— २०२
२.१. योगचिकित्साविधि-न्याय कर्मसिद्धान्त के प्रतिकूल २०७
२.२. यापनीय-परम्परा में अन्य प्रकार के २७ मूलगुण २०८
२.३. उत्तरगुण भी यापनीयमत में अमान्य २१०
३. स्त्रीमुक्ति अमान्य २१०
४. अन्यलिंग से मुक्ति का निषेध २१३
५. गृहिलिंग से मुक्ति का निषेध २१४
६. अपरिग्रह का लक्षण यापनीयमत-विरुद्ध २१५
७. गुणस्थानानुसार रत्नत्रय के विकास की मान्यता २१६
८. सोलह कल्पों की मान्यता २१७
९. नौ अनुदिश-स्वर्गों की मान्यता २१८
१०. वेदत्रय की स्वीकृति २१८
च— दिगम्बरकृतित्व-विषयक बहिरंग प्रमाण— २१९

१. दिगम्बराचार्यों के लिए प्रमाणभूत २१९
२. समस्त टीकाएँ दिगम्बर आचार्यों और पण्डितों द्वारा लिखित २२०
३. मूलाचार की रचना यापनीयसंघोत्पत्ति-पूर्व २२१

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता का उद्घाटन २२२

१. 'विरती' शब्द का प्रयोग उपचार से २२२
□ निर्ग्रन्थी शब्द का प्रयोग नहीं २२५
२. आर्यिकाओं के लिए मुनियोग्य सामाचार का विधान नहीं २२६
३. आर्यिकाओं की परम्परया मुक्ति का कथन २२७
४. आर्यिका का मुनिसंघ में समावेश मुनितुल्य होने का प्रमाण नहीं २२९
५. स्त्री की औपचारिक दीक्षा मान्य २३०
६. समान गाथाएँ दिगम्बरग्रन्थों से गृहीत २३३
७. कथित गाथाएँ दिगम्बरत्व-विरोधी नहीं २३५
८. 'आचार', 'जीतकल्प' ग्रन्थों के नाम नहीं २३८
९. 'आराधनानिर्युक्ति' आदि दिगम्बरग्रन्थों के नाम २३९
१०. 'मूलाचार' की रचना का आधार 'आवश्यकनिर्युक्ति' नहीं २४४
११. कुन्दकुन्द की ही परम्परा का ग्रन्थ २४५
१२. 'मूलाचार' में श्वेताम्बरीय गाथाओं का अभाव २४७
□ उपसंहार : दिगम्बरकृति होने के प्रमाणसूत्ररूप में २४८

षोडश अध्याय

तत्त्वार्थसूत्र

प्रथम प्रकरण—तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बरग्रन्थ न होने के प्रमाण २५३

क— श्वेताम्बरग्रन्थ होने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु २५३
ख— हेतुओं की असत्यता और हेत्वाभासता २५४
ग— सूत्र और भाष्य के भिन्नकर्तृत्व-साधक प्रमाण २५५
१. सूत्र और भाष्य में सम्प्रदाय भेद— २५५
१.१. सूत्र में अन्यलिंगि-मुक्तिनिषेध २५६
१.२. सूत्र में गृहिलिंगि-मुक्तिनिषेध २६१
१.३. सूत्र में सवस्त्रमुक्तिनिषेध— २६३

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.३.१. नग्न रहने पर ही शीतादिपरीषह संभव २६३
१.३.२. श्वेताम्बरागमों में परीषहत्राणार्थ ही वस्त्रधारण की अनुमति २६४
१.३.३. चोलपट्टधारी को नाग्न्यपरीषह संभव नहीं २६५
१.३.४. अर्धफालकधारी को नाग्न्यशीतादि-परीषह संभव नहीं २६८
१.३.५. श्वेताम्बरमत में नाग्न्य हेय है २६९
१.३.६. श्वेताम्बरमत में शीतादिपरीषह निवारणीय हैं, सहनीय नहीं २७०
१.३.७. तत्त्वार्थसूत्र में उपचारनाग्न्य मान्य नहीं २७१
१.३.८. परीषहजय की कल्पित परिभाषा युक्तिसंगत नहीं २७४
१.३.९. याचनापरीषहजय भी सवस्त्रमुक्तिविरोधी २७४
१.३.१०. दिन को रात बना देने का अद्भुत साहस २७५
१.४. सूत्र में स्त्रीमुक्तिनिषेध २७८
१.५. अपरिग्रह की परिभाषा वस्त्रपात्रादिग्रहण-विरोधी २८५
१.६. तीर्थंकरप्रकृति-बन्धक हेतुओं की सोलह संख्या श्वेताम्बरमत-विरुद्ध २८८
१.७. सूत्र में केवलिभुक्ति-निषेध— २८९
१.७.१. नाग्न्यपरीषह के उल्लेख से केवली का कवलाहारी होना निषिद्ध २९६
१.७.२. अनन्तसुख की अवस्था में कोई भी परीषह संभव नहीं २९७
१.७.३. केवली में चर्यादि-परीषहों का अभाव अन्य कारणों से भी २९८
१.७.४. याचनापरीषह-निषेध से केवलिभुक्ति का निषेध २९८
१.७.५. इच्छा, याचना तीव्रमोहोदय का कार्य २९९
१.७.६. परीषह न होने पर भी होने का कथन क्यों? ३००
१.७.७. साम्प्रदायिकता का आरोप और उसका निराकरण ३०५
२. सूत्र और भाष्य में विसंगतियाँ— ३०६
२.१. 'यथोक्तनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्' ३०७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२.२. आक्षेप का निराकरण ३०८
२.३. 'क्षयोपशमनिमित्तः' रखने का प्रयोजन ३१०
२.४. 'यथोक्तनिमित्तः' को हटाने का आरोप मिथ्या ३११
२.५. 'इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः---' ३११
२.६. 'इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंश---' ३१४
२.७. आक्षेप का निराकरण ३१५
२.८. 'सारस्वत्यादित्य---' ३१७
२.९. सम्यग्दृष्टि और सम्यग्दर्शनी ३१८
२.१०. 'मतिः स्मृतिः---' ३१८
२.११. शब्दादि नय ३१९
२.१२. चरमदेहोत्तमपुरुष ३१९
२.१३. प्राणापान ३२०
२.१४. घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः ३२०
२.१५. 'औदारिकवैक्रिय---' ३२१
२.१६. महाव्रत संवर के हेतु ३२१
२.१७. 'कालश्चेत्येके' ३२२
२.१८. 'बादरसाम्पराये सर्वे' ३२३
३. सूत्र-भाष्य-एककर्तृत्वविरोधी अन्य हेतु— ३२४
३.१. कर्मणो योग्यान् ३२४
३.२. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की सटिप्पण प्रति ३२४
३.३. सटिप्पण प्रति में कुछ अधिक सूत्र ३२६
३.४. भाष्य के पूर्व भी कुछ श्वेताम्बरटीकाएँ रचित ३२६
४. एककर्तृत्व के पक्षधर हेतुओं की हेत्वाभासता के प्रमाण— ३२८
४.१. स्वोपज्ञता सर्वमान्य नहीं है ३२८
४.२. उत्तमपुरुष की क्रिया सूत्रकार-भाष्यकार के एकत्व का प्रमाण नहीं ३३१
४.३. सूत्र और भाष्य में विरोध एवं विसंगतियाँ ३३५
५. एककर्तृत्वविरोधी बाह्य हेतु ३३६
द्वितीय प्रकरण—सर्वार्थसिद्धि की भाष्यपूर्वता के प्रमाण ३३८
१. सर्वार्थसिद्धि और भाष्य में वाक्यगत साम्य ३३८

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२. सर्वार्थसिद्धि में भाष्य का अनुकरण नहीं ३४१
३. भाष्य में सर्वार्थसिद्धि का अनुकरण ३४१
४. सर्वार्थसिद्धिमान्य सूत्रपाठ का भाष्य में उल्लेख ३४४
५. सर्वार्थसिद्धि में भाष्य की चर्चा नहीं ३४७
६. सर्वार्थसिद्धि को भाष्योत्तरवर्ती सिद्ध करनेवाले हेतु असत्य— ३५१
६.१. तत्त्वार्थाधिगमभाष्य की शैली अर्वाचीन ३५१
६.२. तत्त्वार्थाधिगमभाष्य में अर्थविस्तार ३५६
६.३. अव्याख्या व्याख्याग्रन्थ की अविकसितता का लक्षण नहीं ३६४
६.४. दोनों की रचना सम्प्रदायभेद के बाद ३६९
७. भाष्य का रचनाकाल छठी शती ई० का पूर्वार्ध ३७३
८. तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता का नाम गृध्रपिच्छाचार्य ३७५
□ तत्त्वार्थसूत्रकार का 'उमास्वाति' नाम संभव नहीं ३७९

तृतीय प्रकरण—'तत्त्वार्थ' के सूत्र दिगम्बरमत के विरुद्ध नहीं ३८२

१. बारह स्वर्ग भी दिगम्बरमत में मान्य ३८२
२. 'कालश्चेत्येके' सूत्र मौलिक नहीं ३८५
३. पुलाकादि मुनि दिगम्बरमत-विरुद्ध नहीं ३८७
४. दिगम्बरग्रन्थों में भी केवली का दर्शनज्ञानयौगपद्य ३८८

चतुर्थ प्रकरण—तत्त्वार्थसूत्र की रचना के आधार दिगम्बरग्रन्थ ३९०

१. श्वेताम्बर-आगम तत्त्वार्थसूत्र की रचना के आधार नहीं ३९०
२. सूत्रों की दिगम्बरग्रन्थों से शब्द-अर्थ-रचनागत समानता ३९४
३. गुणस्थानाश्रित निरूपण के आधार दिगम्बरग्रन्थ ४११

पञ्चम प्रकरण—तत्त्वार्थसूत्र के उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का ग्रन्थ न होने के प्रमाण ४१२

१. तत्त्वार्थसूत्र के उक्त सम्प्रदाय का ग्रन्थ होने की मान्यता ४१२
२. उमास्वाति को उक्त सम्प्रदाय का आचार्य मानने के हेतु ४१३
□ निरसन ४१५

षष्ठ प्रकरण—तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल द्वितीय शताब्दी ई० ४१७

सप्तम प्रकरण—तत्त्वार्थसूत्र के यापनीयग्रन्थ न होने के प्रमाण ४१९
□ उपसंहार—तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरग्रन्थ : प्रमाण सूत्ररूप में ४२६

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सप्तदश अध्याय

तिलोयपण्णत्ती

प्रथम प्रकरण—तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ४३१

क— रचनाकाल : ईसा की द्वितीय शती का उत्तरार्ध ४३१
ख— यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु ४३१
ग— सभी हेतु असत्य ४३३
घ— तिलोयपण्णत्ती में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त ४३३
१. सवस्त्रमुक्तिनिषेध ४३३
२. स्त्रीमुक्तिनिषेध— ४३५
२.१. स्त्रियाँ पूर्वधर नहीं होतीं ४३६
२.२. मल्लिनाथ के साथ कोई स्त्रीदीक्षा नहीं ४३६
२.३. समस्त तीर्थंकरों के तीर्थ में केवल मुनियों को ही मोक्ष— ४३७
२.४. मल्लिनाथ का अवतार अपराजितस्वर्ग से, जयन्त से नहीं ४३८
२.५. हुण्डावसर्पिणी के दोषों में स्त्रीतीर्थंकर का उल्लेख नहीं ४३८
३. गृहस्थमुक्तिनिषेध ४३९
४. अन्यलिंगिमुक्तिनिषेध ४४०
५. केवलिभुक्तिनिषेध ४४०
६. आचार्यपरम्परा दिगम्बरमतानुसार ४४२
७. आगमों के विच्छेद का कथन ४४३
८. कल्पों की संख्या १२ और १६ दोनों मान्य ४४४
९. नव अनुदिश मान्य ४४५
१०. अन्तरद्वीपों की संख्या ९६ मान्य ४४५
११. काल की स्वतंत्रद्रव्य के रूप में मान्यता ४४७
१२. मोक्षमार्ग की चतुर्दश-गुणस्थानात्मकता ४४९
१३. दिव्यध्वनि सर्वभाषात्मक ४५०
१४. चामर-प्रातिहार्य में चामरों की बहुलता ४५१
१५. तीर्थंकर के नभोयान का उल्लेख ४५३
१६. कुन्दकुन्द की गाथाओं का संग्रहण एवं अनुकरण ४५४

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ४५६

१. कसायपाहुडचूर्णि एवं यतिवृषभ यापनीय नहीं ४५६
२. दिगम्बरों में कसायपाहुडचूर्णि का लेखन ४५७
३. उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा कपोलकल्पित ४५७
४. शिवार्य दिगम्बर थे ४५८
५. नाम के साथ 'यति' शब्द का प्रयोग यापनीय होने का लक्षण नहीं ४५८
६. स्त्रीमुक्त्यादि-निषेध का अनुल्लेख यापनीयग्रन्थ का लक्षण नहीं ४५९
७. न शिवार्य यापनीय थे, न यतिवृषभ ४५९
८. 'गणी' शब्द यतिवृषभ का सूचक नहीं ४६०
९. आगमविच्छेदक्रम न प्रक्षिप्त, न यापनीयकथित ४६१
□ उपसंहार—ति० प० के दिगम्बराचार्यकृत होने के प्रमाण सूत्ररूप में ४६४

अष्टादश अध्याय

सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन : दिगम्बराचार्य

प्रथम प्रकरण—सन्मतिसूत्रकार के दिगम्बर होने के प्रमाण ४६९

१. सन्मतिसूत्र जैनदर्शन-प्रभावक ग्रन्थ ४६९
२. सिद्धसेन नाम के अनेक ग्रन्थकार ४७०
३. कल्याणमन्दिरस्तोत्र-वर्णित पार्श्वनाथ-उपसर्ग श्वेताम्बरमत-विरुद्ध ४७२
४. न्यायावतार एवं ३२ द्वात्रिंशिकाओं का परिचय ४७३
५. सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन केवल 'सन्मतिसूत्र' के कर्त्ता ४७९
□ समान प्रतिभा का हेतु साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास ४८१
५.१. सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन अभेदवाद (एकोपयोगवाद) के पुरस्कर्त्ता ४८२
५.२. प्रथम-द्वितीय-पंचम द्वात्रिंशिकाएँ युगपद्वादप्रतिपादक ४८४
५.३. निश्चयद्वात्रिंशिका एकोपयोगवाद-विरोधी, युगपद्वादी ४८६
५.४. निश्चयद्वात्रिंशिका मति-श्रुतभेद-अवधि-मन:पर्ययभेद-विरोधी ४८६
५.५. 'सन्मतिसूत्र' मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-भेदसमर्थक ४८७
५.६. न्यायावतार मतिज्ञान-श्रुतज्ञानादि-भेदसमर्थक ४८७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५.७. निश्चयद्वात्रिंशिका में ज्ञानदर्शनचारित्र व्यस्तरूप से मोक्षमार्ग, सन्मतिसूत्र में समस्तरूप से ४८९
५.८. निश्चयद्वात्रिंशिका में धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्य अमान्य, सन्मतिसूत्र में मान्य ४९०
५.९. निश्चयद्वात्रिंशिकाकार सिद्धसेन के लिए 'द्वेष्य श्वेतपट' विशेषण का प्रयोग ४९१
५.१०. न्यायावतार सन्मतिसूत्र से एक शताब्दी पश्चात् की रचना ४९२
६. सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन निर्युक्तिकार भद्रबाहु से उत्तरवर्ती ४९६
७. सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन का समय छठी और ७वीं शती ई० का मध्य— ४९९
७.१. पूज्यपाद-उल्लिखित सिद्धसेन सन्मतिसूत्रकार से भिन्न एवं पूर्ववर्ती ५०५
७.२. पूज्यपादकृत जैनेन्द्रव्याकरण में समन्तभद्र का उल्लेख ५०७
७.३. न्यायावतार में समन्तभद्र का अनुकरण ५०९
७.४. प्रथम द्वात्रिंशिका में समन्तभद्र का प्रचुर अनुकरण ५१०
७.५. आद्य जैन तार्किक सिद्धसेन नहीं, अपितु समन्तभद्र ५१३
७.६. कतिपय द्वात्रिंशिकाओं के कर्त्ता सिद्धसेन पूज्यपाद से पूर्ववर्ती ५१४
८. सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन : दिगम्बराचार्य ५१५
८.१. दिगम्बर-सेनगण के आचार्य ५१६
८.२. सर्वप्रथम हरिभद्रसूरि की 'पञ्चवस्तु' में सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन के लिए 'दिवाकर' उपनाम का प्रयोग ५१८
८.३. नामसाम्य के कारण 'दिवाकर' उपनाम अन्य सिद्धसेनों के भी साथ जुड़ गया ५२१
८.४. रविषेण के पद्मचरित में 'दिवाकरयति' का उल्लेख ५२२
८.५. दूसरी, पाँचवीं द्वात्रिंशिकाओं में युगपद्वाद एवं स्त्रीवेदी-पुरुष-मुक्ति मान्य ५२३
८.६. सन्मतिसूत्र में श्वेताम्बरमान्य क्रमवाद का खण्डन ५२७
८.७. श्वेताम्बराचार्यों द्वारा सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन की निन्दा ५२८
८.८. दिगम्बरसाहित्य में सन्मतिसूत्रकार का गौरवपूर्वक स्मरण ५२८

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

९. कुछ द्वात्रिंशिकाओं के कर्त्ता एक अन्य दिगम्बर सिद्धसेन और कुछ श्वेताम्बर सिद्धसेन ५३०
१०. न्यायावतार के कर्त्ता एक अन्य श्वेताम्बर सिद्धसेन ५३१

द्वितीय प्रकरण—मुख्तार जी के निर्णयों का विरोध और उसकी आधारहीनता ५३३

तृतीय प्रकरण—सर्वार्थसिद्धि पर समन्तभद्र का प्रभाव ५४०

□ लेख—**सर्वार्थसिद्धि पर समन्तभद्र का प्रभाव** पं० जुगलकिशोर मुख्तार, सम्पादक—'अनेकान्त' ५४०

चतुर्थ प्रकरण—सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन समन्तभद्र से पूर्ववर्ती नहीं ५५५

□ आप्तमीमांसाकार समन्तभद्र ही रत्नकरण्ड के कर्त्ता ५५५
□ लेख—**रत्नकरण्ड के कर्तृत्व-विषय में मेरा विचार और निर्णय** लेखक : पं० जुगलकिशोर मुख्तार ५५७
□ प्रो० हीरालाल जी जैन का नया मत—'रत्नकरण्ड' का 'क्षुत्पिपासा'-पद्यगत 'दोष' शब्द आप्तमीमांसाकार के मतानुरूप नहीं ५५७
□ निरसन ५६३
१. आप्तमीमांसा में आप्तदोष के स्वरूप का वर्णन नहीं ५६३
२. अष्टसहस्री के 'विग्रहादिमहोदय' में भुक्त्युपसर्गाभाव अन्तर्भूत ५६४
३. आप्तमीमांसाकार को केवली में क्षुधादिदोष मान्य नहीं ५६७
४. 'विद्वान्' शब्द 'तत्त्वज्ञानी' का वाचक, 'सर्वज्ञ' का नहीं ५६९
५. 'स्वदोषशान्त्या' आदि पद्यों में केवली के क्षुधादि दोषों की शान्ति का कथन ५७४
६. पूर्व में रत्नकरण्ड का समन्तभद्रकर्तृत्व एवं प्राचीनता स्वीकृत ५७५
७. सर्वार्थसिद्धि में रत्नकरण्ड के शब्दार्थादि का अनुकरण ५७७
□ ७वीं शती ई. के 'न्यायावतार' में 'रत्नकरण्ड' का पद्य ५७९

पञ्चम प्रकरण—रत्नकरण्ड और रत्नमाला में सैद्धान्तिक एवं कालगत भेद ६०४

□ लेख—**क्या रत्नकरण्डश्रावकाचार स्वामी समन्तभद्र की कृति नहीं है?**—लेखक : न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया ६०५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

षष्ठ प्रकरण—रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसादि में शब्दार्थसाम्य ६१३

सप्तम प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६१७

अष्टम प्रकरण—उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के पक्षधर हेतुओं की असत्यता ६२५

एकोनविंश अध्याय

रविषेणकृत पद्मपुराण

प्रथम प्रकरण—पद्मपुराण के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ६२९

□ पद्मपुराण में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त— ६३०

१. वैकल्पिक सवस्त्र-मुनिलिंग का निषेध— ६३०

१.१. मुनियों का एक ही लिंग : दिगम्बरलिंग ६३०

१.२. दिगम्बर मुनि की ही मुनि, श्रमण, साधु आदि संज्ञाएँ ६३२

१.३. 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'दिगम्बर' का वाचक ६३२

१.४. वस्त्र का भी परित्याग 'अशेष परिग्रहत्याग' का लक्षण ६३३

१.५. सभी के द्वारा दिगम्बर दीक्षा का ग्रहण ६३४

१.६. सभी को दिगम्बर मुनि बनने का उपदेश ६३५

१.७. वस्त्रपात्रादि उपकरणधारी कुलिंगी हैं ६३६

१.८. जैनलिंग से ही मोक्ष की प्राप्ति ६३६

२. वस्त्रमात्र-परिग्रहधारी की क्षुल्लक संज्ञा ६३७

३. गृहस्थमुक्तिनिषेध ६३९

४. परतीर्थिक-मुक्तिनिषेध ६४०

५. स्त्रीमुक्तिनिषेध ६४१

६. सोलहकल्पादि की स्वीकृति ६४३

७. कथावतार की दिगम्बरपद्धति ६४३

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६४५

विंश अध्याय

वराङ्गचरित

प्रथम प्रकरण—वराङ्गचरित के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ६५५

□ वराङ्गचरित में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त— ६५५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

९. कुछ द्वात्रिंशिकाओं के कर्त्ता एक अन्य दिगम्बर सिद्धसेन और कुछ श्वेताम्बर सिद्धसेन ५३०
१०. न्यायावतार के कर्त्ता एक अन्य श्वेताम्बर सिद्धसेन ५३१

द्वितीय प्रकरण—मुख्तार जी के निर्णयों का विरोध और उसकी आधारहीनता ५३३

तृतीय प्रकरण—सर्वार्थसिद्धि पर समन्तभद्र का प्रभाव ५४०

□ लेख—**सर्वार्थसिद्धि पर समन्तभद्र का प्रभाव** पं० जुगलकिशोर मुख्तार, सम्पादक—'अनेकान्त' ५४०

चतुर्थ प्रकरण—सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन समन्तभद्र से पूर्ववर्ती नहीं ५५५

□ आप्तमीमांसाकार समन्तभद्र ही रत्नकरण्ड के कर्त्ता ५५५
□ लेख—**रत्नकरण्ड के कर्तृत्व-विषय में मेरा विचार और निर्णय** लेखक : पं० जुगलकिशोर मुख्तार ५५७
□ प्रो० हीरालाल जी जैन का नया मत—'रत्नकरण्ड' का 'क्षुत्पिपासा'-पद्यगत 'दोष' शब्द आप्तमीमांसाकार के मतानुरूप नहीं ५५७
□ निरसन ५६३
१. आप्तमीमांसा में आप्तदोष के स्वरूप का वर्णन नहीं ५६३
२. अष्टसहस्री के 'विग्रहादिमहोदय' में भुक्त्युपसर्गाभाव अन्तर्भूत ५६४
३. आप्तमीमांसाकार को केवली में क्षुधादिदोष मान्य नहीं ५६७
४. 'विद्वान्' शब्द 'तत्त्वज्ञानी' का वाचक, 'सर्वज्ञ' का नहीं ५६९
५. 'स्वदोषशान्त्या' आदि पद्यों में केवली के क्षुधादि दोषों की शान्ति का कथन ५७४
६. पूर्व में रत्नकरण्ड का समन्तभद्रकर्तृत्व एवं प्राचीनता स्वीकृत ५७५
७. सर्वार्थसिद्धि में रत्नकरण्ड के शब्दार्थादि का अनुकरण ५७७
□ ७वीं शती ई. के 'न्यायावतार' में 'रत्नकरण्ड' का पद्य ५७९

पञ्चम प्रकरण—रत्नकरण्ड और रत्नमाला में सैद्धान्तिक एवं कालगत भेद ६०४

□ लेख—**क्या रत्नकरण्डश्रावकाचार स्वामी समन्तभद्र की कृति नहीं है?**—लेखक : न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया ६०५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

षष्ठ प्रकरण—रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसादि में शब्दार्थसाम्य ६१३

सप्तम प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६१७

अष्टम प्रकरण—उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के पक्षधर हेतुओं की असत्यता ६२५

एकोनविंश अध्याय

रविषेणकृत पद्मपुराण

प्रथम प्रकरण—पद्मपुराण के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ६२९

□ पद्मपुराण में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त— ६३०

१. वैकल्पिक सवस्त्र-मुनिलिंग का निषेध— ६३०

१.१. मुनियों का एक ही लिंग : दिगम्बरलिंग ६३०

१.२. दिगम्बर मुनि की ही मुनि, श्रमण, साधु आदि संज्ञाएँ ६३२

१.३. 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'दिगम्बर' का वाचक ६३२

१.४. वस्त्र का भी परित्याग 'अशेष परिग्रहत्याग' का लक्षण ६३३

१.५. सभी के द्वारा दिगम्बर दीक्षा का ग्रहण ६३४

१.६. सभी को दिगम्बर मुनि बनने का उपदेश ६३५

१.७. वस्त्रपात्रादि उपकरणधारी कुलिंगी हैं ६३६

१.८. जैनलिंग से ही मोक्ष की प्राप्ति ६३६

२. वस्त्रमात्र-परिग्रहधारी की क्षुल्लक संज्ञा ६३७

३. गृहस्थमुक्तिनिषेध ६३९

४. परतीर्थिक-मुक्तिनिषेध ६४०

५. स्त्रीमुक्तिनिषेध ६४१

६. सोलहकल्पादि की स्वीकृति ६४३

७. कथावतार की दिगम्बरपद्धति ६४३

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६४५

विंश अध्याय

वराङ्गचरित

प्रथम प्रकरण—वराङ्गचरित के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ६५५

□ वराङ्गचरित में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त— ६५५

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१. केवलिभुक्तिनिषेध ६५५

□ केवलिभुक्तिनिषेध पर आवरण : छलवाद ६५६

२. वैकल्पिक-सवस्त्रमुक्तिनिषेध— ६५६

२.१. राजा वरांग की दैगम्बरी दीक्षा ६५७

२.२. वरांगियों के वर्णन को वरांग का वर्णन कहना छलवाद ६५८

२.३. वरांग की सवस्त्रदीक्षा की संभावना के लिए स्थान नहीं ६६०

२.४. साधु के साथ 'सवस्त्र' शब्द का प्रयोग एक भी बार नहीं ६६१

२.५. 'विशीर्णवस्त्रा' मुनियों का नहीं, आर्यिकाओं का विशेषण ६६२

२.६. निर्ग्रन्थशूर ही मोक्ष के पात्र ६६३

२.७. परीषहजयविधान दिगम्बरत्व की अनिवार्यता का सूचक ६६४

३. स्त्रीमुक्तिनिषेध ६६५

४. महावीर का विवाह न होने की मान्यता ६६६

५. अन्यलिंगिमुक्ति-निषेध ६६७

६. महाव्रतों की भावनाएँ तत्त्वार्थाधिगमभाष्य से भिन्न ६६७

७. यापनीयमत-विरुद्ध अन्य सिद्धान्त ६६८

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६७०

१. 'श्रवण' या 'श्रमण' सचेलमुनि का वाचक नहीं ६७०

२. पुन्नाटसंघ का विकास पुन्नागवृक्षमूलगण से नहीं ६७४

३. काणूरगण दिगम्बरसम्प्रदाय का ही गण था ६७५

४. कोप्पल से सम्बद्ध होना यापनीय होने का लक्षण नहीं ६७६

५. 'यति' शब्द का प्रयोग यापनीय होने का लक्षण नहीं ६७६

६. वरांगचरित में श्वेताम्बरसाहित्य का अनुसरण नहीं ६७७

७. विमलसूरि के पउमचरिय का अनुकरण नहीं ६७९

८. कल्पों की बारह संख्या भी दिगम्बरमान्य ६८०

९. दिगम्बरपरम्परा में कर्मणा वर्णव्यवस्था मान्य ६८०

□ उपसंहार : वरांगचरित के दिगम्बरकृति होने के प्रमाण सूत्ररूप में ६८३

एकविंश अध्याय

हरिवंशपुराण

प्रथम प्रकरण—हरिवंशपुराण के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ६८७

□ हरिवंशपुराण में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त— ६८७

१. स्त्रीमुक्तिनिषेध ६८७

२. सवस्त्रमुक्ति एवं गृहस्थमुक्ति का निषेध ६८९

३. परतीर्थिकमुक्ति का निषेध ६९१

४. केवलिभुक्तिनिषेध ६९२

५. यापनीयमत-विरुद्ध अन्य सिद्धान्त ६९३

६. दिगम्बर-गुरुपरम्परा से सम्बद्ध ६९५

७. दिगम्बर-ग्रन्थकारों का गुणकीर्त्तन ६९६

८. दिगम्बरग्रन्थों का अनुकरण ६९६

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता ६९९

द्वाविंश अध्याय

स्वयम्भूकृत पउमचरिउ

प्रथम प्रकरण—पउमचरिउ के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण ७१७

१. कथावतार की दिगम्बरीय पद्धति ७१८

२. सोलह स्वप्नों का वर्णन ७१८

३. सोलह कल्पों की मान्यता ७१९

४. स्त्रीमुक्तिनिषेध ७२०

५. परतीर्थिकमुक्तिनिषेध ७२१

६. सचेलमुक्ति का प्रतिपादन नहीं ७२३

७. दिव्यध्वनि द्वारा चौदह गुणस्थानों का उपदेश ७२५

द्वितीय प्रकरण—यापनीयपक्षधर हेतुओं की हेत्वाभासता ७२६

१. 'पद्म' नाम का प्रयोग यापनीयग्रन्थ का असाधारणधर्म नहीं ७२६

२. दिगम्बरपरम्परा में भी नैगमदेव मान्य ७२७

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३. आचार्य प्रभव का उल्लेख यापनीयग्रन्थ का असाधारण धर्म नहीं ७२८
४. देवनिर्मित कमलों के ऊपर चलना दिगम्बरीय मान्यता भी ७२८
५. मागधीभाषा में उपदेश दिगम्बरपरम्परा में भी मान्य ७२९
६. अदिगम्बरीय मान्यताओं का यापनीयमान्यता होना अप्रामाणिक ७३०

त्रयोविंश अध्याय

बृहत्कथाकोश

□ बृहत्कथाकोश के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण— ७३५
१. स्त्रीमुक्ति का प्रतिपादन नहीं, अपितु निषेध ७३५
२. गृहस्थमुक्तिनिषेध ७४४
३. सवस्त्रमुक्तिनिषेध ७४९
□ सवस्त्रमुक्तिनिषेध के अन्य प्रमाण ७५०
४. भगवती-आराधना दिगम्बरग्रन्थ ७५८
५. पुन्नाटसंघ दिगम्बरसंघ ७५८
६. दिगम्बरग्रन्थ होने के अन्य प्रमाण ७५९
७. भद्रबाहुकथानक में कोई भी अंश प्रक्षिप्त नहीं ७६०

चतुर्विंश अध्याय

छेदपिण्ड, छेदशास्त्र एवं प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

□ इनके दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण— ७६५
□ छेदपिण्ड ७६५
१. मुनि के दिगम्बरमान्य अट्ठाईस मूलगुणों का विधान ७६५
२. अचेलव्रत भंग करने पर प्रायश्चित का विधान ७६६
□ यापनीयपक्ष-समर्थक हेतुओं का निरसन— ७६७
१. दिगम्बरग्रन्थों में भी श्रमणी का उल्लेख ७६७
२. काणूरगण दिगम्बरसंघ का गण ७६८
३. रविषेण दिगम्बराचार्य हैं ७६९
४. छेदपिण्ड के कर्त्ता इन्द्र यापनीय नहीं ७६९

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५. गोम्मटसार के कर्त्ता के गुरु इन्द्रनन्दी दिगम्बर ७६९
६. श्वेतपटश्रमणों का पाषण्डरूप में उल्लेख ७७०
७. 'कल्पव्यवहार' आदि ग्रन्थ दिगम्बरपरम्परा में भी ७७०
८. छेदपिण्ड 'मूलाचार' आदि दिगम्बरग्रन्थों की परम्परा का ७७१
९. 'देशयति' शब्द देशव्रती या श्रावक का ही पर्यायवाची ७७२
□ छेदशास्त्र ७७६
□ प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी ७७७

पंचविंश अध्याय

बृहत्प्रभाचन्द्रकृत तत्त्वार्थसूत्र

□ इसके दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण— ७८७
१. दिगम्बरमत में भी जिनकल्प-स्थविरकल्प मान्य, किन्तु दोनों नाग्न्यलिंगी ७८७
२. यापनीयमत में जिनकल्प पर विशेष बल नहीं ७९०
३. केवलिभुक्ति-भ्रम-परिहारार्थ परीषहसूत्रों का अनुल्लेख ७९०
४. आचार्य अमृतचन्द्र का अनुसरण ७९१
५. भाववेदत्रय की स्वीकृति ७९१
६. 'दशसूत्र' शब्द का प्रयोग ७९१
□ **शब्दविशेष-सूची** ७९३
□ **प्रयुक्त ग्रन्थों एवं शोधपत्रिकाओं की सूची** ८२१

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५. गोम्मटसार के कर्त्ता के गुरु इन्द्रनन्दी दिगम्बर ७६९
६. श्वेतपटश्रमणों का पाषण्डरूप में उल्लेख ७७०
७. 'कल्पव्यवहार' आदि ग्रन्थ दिगम्बरपरम्परा में भी ७७०
८. छेदपिण्ड 'मूलाचार' आदि दिगम्बरग्रन्थों की परम्परा का ७७१
९. 'देशयति' शब्द देशव्रती या श्रावक का ही पर्यायवाची ७७२
□ छेदशास्त्र ७७६
□ प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी ७७७

पंचविंश अध्याय

बृहत्प्रभाचन्द्रकृत तत्त्वार्थसूत्र

□ इसके दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण— ७८७
१. दिगम्बरमत में भी जिनकल्प-स्थविरकल्प मान्य, किन्तु दोनों नाग्न्यलिंगी ७८७
२. यापनीयमत में जिनकल्प पर विशेष बल नहीं ७९०
३. केवलिभुक्ति-भ्रम-परिहारार्थ परीषहसूत्रों का अनुल्लेख ७९०
४. आचार्य अमृतचन्द्र का अनुसरण ७९१
५. भाववेदत्रय की स्वीकृति ७९१
६. 'दशसूत्र' शब्द का प्रयोग ७९१
□ **शब्दविशेष-सूची** ७९३
□ **प्रयुक्त ग्रन्थों एवं शोधपत्रिकाओं की सूची** ८२१

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्रद्धेय बाबा सा० स्व० श्री रतनलाल जी पाटनी

(मेसर्स आर० के० मार्बल ग्रुप, मदनगंज-किशनगढ़)

दिगम्बर जैन समाज के नररत्न, बालब्रह्मचर्य के साथ शताधिकवर्षजीवी, देशव्रती बाबासाहब श्री रतनलाल जी पाटनी एवं उनके परिवारजनों ने धार्मिक एवं सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में उत्कृष्ट कीर्तिमान स्थापित किए हैं। ये तीर्थक्षेत्रों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार, यात्रीनिवास, पाठशाला, अस्पताल आदि के निर्माण तथा साहित्यप्रकाशन में पर्याप्त आर्थिक सहयोग प्रदान करने में सदैव अग्रणी रहे हैं। इस अतिमहत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का पुण्यार्जन भी इन्हीं के यशस्वी परिवार के उदारमना श्री अशोककुमार जी पाटनी ने किया है। एतदर्थ उन्हें अनेक साधुवाद।

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तीनों खण्डों की विषयवस्तु का परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ पृथक्-पृथक् ग्रथित तीन खण्डों में विभक्त है, अतः तीनों खण्डों की विषय वस्तु से एक साथ परिचित होने के लिए उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

प्रथम खण्ड की विषयवस्तु

प्रथम खण्ड में क्रमशः **प्रकाशकीय वक्तव्य, ग्रन्थकथा** (ग्रन्थ-लेखन का प्रसंग, प्रेरणा, अनुकूलताओं का अतिशय, सहयोगियों का सौहार्द, गुरुओं का आशीर्वाद, प्रोत्साहन, उनके द्वारा पाण्डुलिपि का श्रवण एवं परिमार्जन, तथा आवश्यक ग्रन्थों की व्यवस्था इत्यादि का विवरण), **ग्रन्थसार** (ग्रन्थ के सभी अध्यायों का सार) और **संकेताक्षर-विवरण** तथा **प्रथम अध्याय** से लेकर **सप्तम अध्याय** तक निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

प्रथम अध्याय—इस अध्याय में श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों के उन कपोल-कल्पित मतों एवं कथाओं का वर्णन किया गया है, जिन्हें उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए हेतु रूप में प्रस्तुत किया है कि दिगम्बरजैनमत तीर्थंकरोपदिष्ट एवं प्राचीन नहीं है, अपितु उसे वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में गृहकलह के कारण श्वेताम्बर स्थविरकल्पी साधु बन जानेवाले बोटिक शिवभूति नाम के एक साधारण पुरुष ने चलाया था। कुछ आधुनिक श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों का कथन है कि दिगम्बरजैनमत का प्रवर्तन विक्रम की छठी शती में दक्षिण भारत में हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने किया था। आधुनिक श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने कथा गढ़ी है कि आचार्य कुन्दकुन्द पहले यापनीयसंघ में दीक्षित हुए थे, पश्चात् उससे अलग हो गये और उन्होंने दिगम्बरमत की स्थापना की। श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने यह कल्पना की है कि आचार्य कुन्दकुन्द पहले भट्टारकसम्प्रदाय में भट्टारकपद पर दीक्षित हुए थे, कुछ समय बाद उस सम्प्रदाय की प्रवृत्तियों से असन्तुष्ट होकर उन्होंने आगमोक्त दिगम्बरजैनमत को पुनरुज्जीवित किया। वर्तमान श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी द्वारा यह कहानी रची गयी है कि 'भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म का उपदेश नहीं दिया था, अपितु अचेल-सचेल दोनों धर्मों का उपदेश दिया था। अतः उनका अनुयायी श्रमणसंघ उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के नाम से जाना जाता था। ईसा की पाँचवीं

शती में इस संघ से केवल सचेलधर्म के समर्थक श्वेताम्बरसंघ का और सचेल-अचेल दोनों धर्मों के समर्थक यापनीयसंघ का जन्म हुआ।' ये तीनों संघ सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं केवलिभुक्ति को मानते थे। महावीर का गर्भपरिवर्तन भी इन तीनों को मान्य था। डॉ० सागरमल जी ने अपनी कहानी में यह भी गढ़ा है कि कुन्दकुन्द का श्रमणसंघ दक्षिणभारतीय-निर्ग्रन्थसंघ कहलाता था और उनका जन्म ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में नहीं, अपितु ईसोत्तर पाँचवीं (विक्रम की छठी) शताब्दी में हुआ था।

दिगम्बर विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी ने यह उद्भावना की है कि भगवती-आराधना, उसकी विजयोदयाटीका, मूलाचार और तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरग्रन्थ नहीं हैं, बल्कि यापनीयपरम्परा के ग्रन्थ हैं। दिगम्बर जैन विदुषी श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया ने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और दिगम्बरग्रन्थों को भी यापनीय-परम्परा में रचित बतलाया है। इससे प्रेरणा पाकर श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी ने उक्त ग्रन्थों के साथ षट्खण्डागम, कसायपाहुड, तिलोयपण्णत्ती, वरांगचरित आदि सोलह दिगम्बर-ग्रन्थों को यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ घोषित कर दिया और तत्त्वार्थसूत्र तथा सन्मतिसूत्र को स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के आचार्यों द्वारा रचित बतलाया है। उन्होंने अनेक कपोलकल्पित हेतुओं के द्वारा इसकी पुष्टि करने का प्रयत्न किया है।

द्वितीय अध्याय—उपर्युक्त मिथ्या मान्यताओं को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये गये कपोलकल्पित हेतुओं में से अनेक की कपोलकल्पितता का उद्घाटन द्वितीय अध्याय में किया गया है। इस अध्याय में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि—

१. वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में बोटिक शिवभूति ने दिगम्बरमत की स्थापना नहीं की थी, अपितु श्वेताम्बरमत छोड़कर परम्परागत दिगम्बरमत का वरण किया था। शिवभूति की मान्यता थी कि श्रुत में अचेलत्व का ही उपदेश है और जिनेन्द्र-गृहीत होने से अचेललिंग ही प्रामाणिक है। यह शिवभूति के वचनानुसार दिगम्बर-मत के परम्परागत होने का प्रमाण है।

२. आचार्य कुन्दकुन्द को आधुनिक श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों ने ईसा की पाँचवीं शताब्दी (४७०-४९० ई०) के कदम्बवंशी राजा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा का समकालीन एवं दिगम्बरमत का संस्थापक माना है। किन्तु इसी राजा के देवगिरि-ताम्रपत्रलेख में श्वेतपट-महाश्रमणसंघ के साथ उसके प्रतिपक्षी दिगम्बरजैनसंघ का निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ के नाम से उल्लेख हुआ है, जिससे सिद्ध है कि दिगम्बरजैनमत पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्व से चला आ रहा था। इसके अतिरिक्त पाँचवीं शती ई०

तीनों खण्डों की विषयवस्तु का परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ पृथक्-पृथक् ग्रथित तीन खण्डों में विभक्त है, अतः तीनों खण्डों की विषय वस्तु से एक साथ परिचित होने के लिए उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

प्रथम खण्ड की विषयवस्तु

प्रथम खण्ड में क्रमशः **प्रकाशकीय वक्तव्य, ग्रन्थकथा** (ग्रन्थ-लेखन का प्रसंग, प्रेरणा, अनुकूलताओं का अतिशय, सहयोगियों का सौहार्द, गुरुओं का आशीर्वाद, प्रोत्साहन, उनके द्वारा पाण्डुलिपि का श्रवण एवं परिमार्जन, तथा आवश्यक ग्रन्थों की व्यवस्था इत्यादि का विवरण), **ग्रन्थसार** (ग्रन्थ के सभी अध्यायों का सार) और **संकेताक्षर-विवरण** तथा **प्रथम अध्याय** से लेकर **सप्तम अध्याय** तक निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

प्रथम अध्याय—इस अध्याय में श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों के उन कपोल-कल्पित मतों एवं कथाओं का वर्णन किया गया है, जिन्हें उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए हेतु रूप में प्रस्तुत किया है कि दिगम्बरजैनमत तीर्थंकरोपदिष्ट एवं प्राचीन नहीं है, अपितु उसे वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में गृहकलह के कारण श्वेताम्बर स्थविरकल्पी साधु बन जानेवाले बोटिक शिवभूति नाम के एक साधारण पुरुष ने चलाया था। कुछ आधुनिक श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों का कथन है कि दिगम्बरजैनमत का प्रवर्तन विक्रम की छठी शती में दक्षिण भारत में हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने किया था। आधुनिक श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने कथा गढ़ी है कि आचार्य कुन्दकुन्द पहले यापनीयसंघ में दीक्षित हुए थे, पश्चात् उससे अलग हो गये और उन्होंने दिगम्बरमत की स्थापना की। श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने यह कल्पना की है कि आचार्य कुन्दकुन्द पहले भट्टारकसम्प्रदाय में भट्टारकपद पर दीक्षित हुए थे, कुछ समय बाद उस सम्प्रदाय की प्रवृत्तियों से असन्तुष्ट होकर उन्होंने आगमोक्त दिगम्बरजैनमत को पुनरुज्जीवित किया। वर्तमान श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी द्वारा यह कहानी रची गयी है कि 'भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म का उपदेश नहीं दिया था, अपितु अचेल-सचेल दोनों धर्मों का उपदेश दिया था। अतः उनका अनुयायी श्रमणसंघ उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के नाम से जाना जाता था। ईसा की पाँचवीं

(४५० ई०) के पूज्यपादस्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में दिगम्बरजैनमत का प्रतिपादन किया है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि दिगम्बर जैनमत इसके बहुत पहले से प्रचलित था। अतः यह मान्यता मिथ्या सिद्ध हो जाती है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने दिगम्बरमत की स्थापना की थी।

३. उपर्युक्त देवगिरि-ताम्रपत्रलेख से सिद्ध है कि ईसा की पाँचवी शताब्दी तक **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए लोकप्रसिद्ध था। और ईसापूर्व तीसरी शताब्दी के अशोक के सातवें स्तम्भलेख में निर्ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि दिगम्बरजैनसंघ ईसापूर्व तृतीय शताब्दी में विद्यमान था। ईसापूर्व छठी शताब्दी के बुद्धवचनों के संग्रहरूप प्राचीन पिटकसाहित्य में तथा ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक के बौद्धसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों को **निर्ग्रन्थ** शब्द से अभिहित किया गया है। इन प्रमाणों से भी श्वेताम्बर विद्वानों की यह मान्यता कपोलकल्पित सिद्ध हो जाती है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने दिगम्बरजैनमत का प्रवर्तन किया था।

४. श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति के पूर्व निर्ग्रन्थसंघ के सभी साधु अचेल (नग्न) होते थे, अतः **निर्ग्रन्थ** शब्द **जैनसाधु** का पर्यायवाची बन गया था। इसलिए जब निर्ग्रन्थसंघ के कुछ साधुओं ने वस्त्रपात्र धारण कर श्वेताम्बरसंघ बना लिया, तब भी उन्होंने जैनसाधु के रूप में अपनी पहचान कराने हेतु अपने लिए 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग प्रचलित रखा। किन्तु यह प्रयोग उनके शास्त्रों तक ही सीमित रहा। इस नाम से वे अपने संघ को प्रसिद्ध नहीं कर सके, क्योंकि यह पहले से ही अचेल (दिगम्बर) जैनश्रमणसंघ के लिए प्रसिद्ध था और यह (निर्ग्रन्थ) शब्द श्वेताम्बरों की साम्प्रदायिक विशिष्टता के विज्ञापन में भी बाधक था। इसलिए उन्होंने अपने संघ को **श्वेतपटसंघ** नाम से प्रसिद्ध किया। ईसापूर्व प्रथम शती के बौद्धग्रन्थ **अपदान** में श्वेताम्बरों को **सेतवत्थ** (**श्वेतवस्त्र**) नाम से अभिहित किया गया है और पाँचवीं शताब्दी ई० के देवगिरि-ताम्रपत्रलेख में उनके संघ का उल्लेख **श्वेतपटमहाश्रमणसंघ** शब्द से हुआ है। इससे सिद्ध है कि श्वेताम्बरसंघ आरंभ से ही 'श्वेतपट' नाम से प्रसिद्ध रहा है। और 'निर्ग्रन्थ' शब्द उनके शास्त्रों में भी मिलता है। इससे सिद्ध होता है निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसंघ) श्वेताम्बरसंघ से प्राचीन है।

५. **यापनीयसंघ** का सर्वप्रथम उल्लेख पाँचवीं शती ई० (सन् ४७०-४९० ई०) के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-ताम्रपत्रलेख में उपलब्ध होता है। इससे पूर्व किसी भी शिलालेख या ग्रन्थ में उसका उल्लेख नहीं मिलता। इससे सिद्ध होता

वस्त्रधारी) मुनियों की चर्चा की गयी है। ५०० ई० पू० से १०० ई० पू० तक रचित **महाभारत** में **नग्नक्षपणक** शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का कथन हुआ है। ३०० ई० के **पञ्चतन्त्र** (अपरीक्षितकारक) में **नग्नक, क्षपणक** और **दिगम्बर** शब्दों से तथा **धर्मवृद्धि** के आशीर्वाद के उल्लेख से दिगम्बरजैन मुनियों का वर्णन किया गया है। **मत्स्यपुराण** (३०० ई०), **विष्णुपुराण** (३००-४०० ई०) **मुद्राराक्षस** नाटक (४००-५०० ई०) **वायुपुराण** (५०० ई०) तथा **वराहमिहिर-बृहत्संहिता** (४९० ई०) में दिगम्बर-जैन मुनियों के लिए **नग्न, निर्ग्रन्थ, दिग्वासस्** और **क्षपणक** शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

बौद्ध पिटकसाहित्य में ईसापूर्व छठी शती के बुद्धवचनों का संकलन है, जो ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में लिपिबद्ध हो चुका था। उसके अन्तर्गत सुत्तपिटक के **अंगुतर-निकाय** में निर्ग्रन्थों को **अहिरिका** (अह्रीक=निर्लज्ज) कहा गया है, जिससे उनका नग्न रहना सूचित होता है। अंगुत्तरनिकाय में ही इन्हें **अचेल** शब्द से भी अभिहित किया गया है। प्रथम शती ई० के बौद्धग्रन्थ **दिव्यावदान** में निर्ग्रन्थों को **नग्न** विचरण करनेवाला कहा गया है। धम्मपद-अट्ठकथा (४-५वीं शती ई०) की **विसाखावत्थु** कथा में भी निर्ग्रन्थों को **नग्नवेशधारी** ही बतलाया गया है तथा आर्यशूर (चौथी शती ई०) ने संस्कृत में रचित **जातकमाला** में निर्ग्रन्थों को वस्त्रधारण करने के कष्ट से मुक्त कहा है।

इन जैनेतर साहित्यिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि दिगम्बरजैनमत ऋग्वेद के रचनाकाल (ई० पू० १५००) से भी प्राचीन है। अतः उसे वीर निर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में बोटिक शिवभूति के द्वारा अथवा विक्रम की छठी शती में आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा प्रवर्तित बतलाया जाना एक बहुत बड़ा झूठ है।

पञ्चम अध्याय—इस अध्याय में पुरातत्त्व के प्रमाणों के आधार पर दिगम्बर-जैनमत की प्राचीनता सिद्ध की गई है। हड़प्पा की खुदाई में ई० पू० २४०० वर्ष पुरानी एक मस्तकविहीन नग्न जिनप्रतिमा प्राप्त हुई है। ठीक वैसी ही एक मौर्यकालीन (ई० पू० तृतीय शताब्दी की) नग्न जिनप्रतिमा लोहानीपुर (पटना, बिहार) में उपलब्ध हुई है। ये प्राचीन नग्न जिनप्रतिमाएँ इस बात का सबूत हैं कि दिगम्बरजैन-परम्परा ईसापूर्व ३०० वर्ष से पुरानी तो है ही, ईसापूर्व २४०० वर्ष से भी प्राचीन है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में नग्न जिनप्रतिमाओं का निर्माण कभी नहीं हुआ, क्योंकि श्वेताम्बर नग्नत्व को अश्लील एवं लोकमर्यादा के विरुद्ध मानते हैं, इसलिए उन्होंने यह कल्पना की है कि तीर्थंकरों का नग्न शरीर दिव्य शुभप्रभामंडल से आच्छादित हो जाता है, फलस्वरूप वे नग्न दिखाई नहीं देते।

षष्ठ अध्याय—दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद का इतिहास इस अध्याय का विषय है। प्रायः सभी दिगम्बरजैनों की यह धारणा है कि दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद ईसापूर्व चौथी शताब्दी में श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के फलस्वरूप हुआ था। किन्तु यह धारणा संशोधनीय है। श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद नहीं हुआ था, अपितु **दिगम्बर-अर्धफालक-भेद** हुआ था। **दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद** तो जम्बूस्वामी के निर्वाण (वीर नि० सं० ६२=४६५ ई० पू०) के पश्चात् ही हो गया था। इसका प्रमाण यह है कि उनके निर्वाण के पश्चात् ही दोनों सम्प्रदायों की गुरुशिष्य-परम्परा अलग-अलग हो गयी थी। निर्ग्रन्थसंघ से पहली बार तो **श्वेताम्बर-संघ** की उत्पत्ति शीतादिपरीषहों की पीड़ा सहने में असमर्थ साधुओं के अचेलत्व को छोड़कर वस्त्रपात्र-कम्बल आदि ग्रहण कर लेने से हुई थी, किन्तु दूसरी बार उससे (निर्ग्रन्थसंघ से) **अर्धफालकसंघ** का जन्म द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के कारण आहारप्राप्ति में उत्पन्न कठिनाइयों के फलस्वरूप हुआ था। अर्धफालक साधु नग्न रहते थे, किन्तु वायें हाथ पर सामने की ओर आधा वस्त्र लटकाकर गुह्यांग छिपाते थे। इस कारण वे **अर्धफालक** नाम से प्रसिद्ध हुए।

सप्तम अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में यापनीयसंघ की उत्पत्ति के स्रोत एवं काल का अनुसन्धान किया गया है। निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसंघ) का प्राचीनतम उल्लेख बौद्धों के पिटकसाहित्य (अंगुत्तरनिकाय) एवं अशोक के सप्तम स्तम्भलेख में मिलता है। तथा श्वेतपटसंघ की चर्चा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के बौद्धग्रन्थ **अपदान** में उपलब्ध होती है। किन्तु यापनीयसंघ का उल्लेख सर्वप्रथम कदम्बवंशी राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-ताम्रपत्रलेख (४७०-४९० ई०) में हुआ है। इससे पूर्व किसी भी अभिलेख या ग्रन्थ में यापनीयसंघ का नाम नहीं मिलता। इससे निर्णीत होता है कि यापनीयसंघ का उदय उक्त उल्लेख से लगभग ५० वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था। डॉ० सागरमल जी ने भी यही माना है। इस संघ का उल्लेख करनेवाले प्रायः सभी शिलालेख एवं इस संघ के बनवाये हुए मंदिर दक्षिण भारत में ही प्राप्त हुए हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति दक्षिण भारत में हुई थी। इस संघ के साधु प्रायः दिगम्बर-साधुओं के समान नग्न रहते थे, मयूरपिच्छी रखते थे और पाणितलभोजी होते थे, तथापि शीतादिपरीषह सहने में असमर्थ अथवा नग्न रहने में लज्जा का अनुभव करनेवाले या जिनका पुरुषचिह्न विकृत होता था, उन साधुओं के लिए इस संघ में श्वेताम्बरों के समान वस्त्रपात्रादि रखने की अनुमति दी गयी थी। इस प्रकार दिगम्बरों के समान नग्नत्व को छोड़कर इसकी सभी मान्यताएँ श्वेताम्बरीय मान्यताओं के समान थीं। अर्थात् यापनीय भी श्वेताम्बरों के समान

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति एवं महावीर के गर्भपरिवर्तन की बात मानते थे। वे श्वेताम्बर-आगमों को भी मानते थे। इस अत्यन्त समानता से सिद्ध होता है कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति श्वेताम्बरसंघ से हुई थी।

इस अध्याय में उन विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है, जो यापीनयग्रन्थ के असाधारणधर्म या लक्षण हैं, जिनके सद्भाव या अभाव से यह निर्णय होता है कि अमुक ग्रन्थ यापनीयग्रन्थ है या नहीं।

सप्तम अध्याय के अन्त में क्रमशः शब्दविशेष-सूची तथा प्रयुक्त ग्रन्थों एवं शोधपत्रिकाओं की सूची विन्यस्त की गयी हैं।

द्वितीय खण्ड की विषयवस्तु

इस खण्ड में आठवें अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक कुल पाँच अध्याय निबद्ध किये गये हैं।

अष्टम अध्याय—आचार्य कुन्दकुन्द ने किसी भी ग्रन्थ में अपने दीक्षागुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने इसका कारण यह बतलाया है कि कुन्दकुन्द शुरू में बोटिक शिवभूति द्वारा प्रवर्तित यापनीयसंघ में उसकी परम्परा के किसी शिष्य द्वारा दीक्षित हुए थे। किन्तु आगे चलकर उन्हें अपने गुरु का शिथिलाचार तथा यापनीयमत की अयुक्तिसंगत मान्यताएँ पसन्द नहीं आयीं, इसलिए वे उनके विरुद्ध हो गये। अन्ततः उन्होंने अपने गुरु का साथ छोड़ दिया और पृथक् दिगम्बरसंघ स्थापित कर लिया। इसीलिए उन्होंने अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया।

श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी का कथन है कि कुन्दकुन्द प्रारम्भ में मन्दिर मठों में नियतवास करनेवाले और राजाओं से भूमिदान आदि ग्रहण करनेवाले भट्टारक-सम्प्रदाय के भट्टारक थे। किन्तु, जब उन्हें धर्म के तीर्थंकरप्रणीत वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब उनके मन में अपने भट्टारक गुरु के प्रति अश्रद्धा हो गयी और वे उनसे अलग हो गये। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रन्थों में उनके नाम का स्मरण नहीं किया। आचार्य हस्तीमल जी ने कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल वीर नि० सं० १००० अर्थात् ४७३ ई० के लगभग माना है और उस समय जो दिगम्बरजैन मुनि मन्दिर-मठ में नियतवास करते थे और राजाओं से ग्राम-भूमि आदि का दान ग्रहण कर गृहस्थों जैसा जीवन व्यतीत करते थे, उनके सम्प्रदाय को भी भट्टारकसम्प्रदाय घोषित किया है।

प्रस्तुत अध्याय में इन दोनों मतों को निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर कपोलकल्पित सिद्ध किया गया है—

१. विशेषावश्यकभाष्य में वर्णित बोटिकमतोत्पत्ति कथा से सिद्ध है कि बोटिक शिवभूति यापनीयसंघ का प्रवर्तक नहीं था, अपितु उसने श्वेताम्बरमत छोड़कर परम्परागत दिगम्बरमत का वरण किया था, अतः उसकी परम्परा में दीक्षित कोई भी व्यक्ति यापनीय नहीं हो सकता था। शिवभूति के दिगम्बर होने पर भी कुन्दकुन्द उसके शिष्य या प्रशिष्य नहीं हो सकते थे, क्योंकि कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध और ईसोत्तर पथम शताब्दी के पूर्वार्ध) में हुए थे। (देखिये, अध्याय १०) और बोटिक शिवभूति ने ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के अन्तिम चरण (वीर निर्वाण सं० ६०९ = ई० सन् ८२) में दिगम्बरमत स्वीकार किया था।

२. कुन्दकुन्द के प्रथमतः यापनीय होने का उल्लेख न तो कुन्दकुन्द ने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में किया है, न किसी अन्य ग्रन्थ या शिलालेख में मिलता है।

३. आचार्य कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में हुए थे और यापनीयसंघ की उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुई थी। (देखिये, अध्याय ७)। इससे भी कुन्दकुन्द का यापनीयसंघ में दीक्षित होना असंभव था।

४. इसी प्रकार भगवान् महावीर द्वारा अनुपदिष्ट सवस्त्र-साधुलिंग को धारण-करनेवाले भट्टारक सम्प्रदाय का उदय ईसा की १२वीं शताब्दी में हुआ था, अतः ग्यारह सौ वर्ष पूर्व हुए आचार्य कुन्दकुन्द का भट्टारकसम्प्रदाय में भी दीक्षित होना नामुमकिन है।

५. १२वीं शताब्दी के पूर्व जिन दिगम्बरजैन साधुओं ने मन्दिरों और मठों में नियतवास आरंभ कर दिया था और भूमि-ग्रामादि का दान ग्रहण करने लगे थे, उनका सम्प्रदाय पासत्थादि-मुनिसम्प्रदाय कहलाता था, भट्टारक-सम्प्रदाय नहीं। पासत्थादि-मुनिसम्प्रदाय और भट्टारकसम्प्रदाय में मौलिक भेद यह था कि पहले ने मुनि अवस्था में रहते हुए गृहस्थकर्म अपना लिया था और दूसरे ने गृहस्थावस्था में रहते हुए मुनिकर्म (धर्मगुरु का पद) हथिया लिया था। इस प्रकारक कुन्दकुन्द के समय में पासत्थादि-मुनियों के सम्प्रदाय का अस्तित्व था, भट्टारकसम्प्रदाय का नहीं। अतः कुन्दकुन्द का भट्टारकसम्प्रदाय में भी दीक्षित होना असंभव था।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि भट्टारकसम्प्रदाय का उदय ईसा की १२वीं शती में ही हुआ था, उसके पूर्व नहीं, प्रस्तुत अध्याय में भट्टारकों के असाधारणधर्मों

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का विस्तार से वर्णन किया गया है और उन धर्मों का विकास १२वीं शती में ही हुआ था, इसे सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।

इसी प्रकार इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है कि मन्दिर-मठों में नियतवास करनेवाले और राजाओं से ग्राम-भूमि आदि का दान लेकर गृहस्थों जैसा जीवन व्यतीत करनेवाले दिगम्बर जैन मुनियों के लिए 'भट्टारक' संज्ञा का प्रयोग किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता उन्हें सर्वत्र पासत्थ (पार्श्वस्थ), कुसील (कुशील), संसत्त (संसक्त) और ओसण्ण (अवसन्न), इन विशेषणों से युक्त 'मुनि' शब्द से ही अभिहित किया गया है।

निष्कर्ष यह कि आचार्य कुन्दकुन्द, न तो कभी यापनीयसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, न भट्टारकसम्प्रदाय में, अतः मुनि कल्याणविजय जी और आचार्य हस्तीमल जी ने कुन्दकुन्द के द्वारा अपने दीक्षागुरु के नाम का उल्लेख न किये जाने के जो कारण बतलाये हैं, वे सर्वथा मिथ्या हैं।

श्वेताम्बराचार्य हस्तीमल जी ने सुप्रसिद्ध दिगम्बरग्रन्थ **गोम्मटसार** के कर्त्ता **नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती** को भी यापनीयसम्प्रदाय का आचार्य बतलाया है। इसका भी सप्रमाण खण्डन प्रस्तुत अध्याय का एक प्रासंगिक विषय है।

नवम अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में इस प्रश्न का समाधान किया गया है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वरचित ग्रन्थों में अपने दीक्षागुरु के नाम का उल्लेख क्यों नहीं किया? वह समाधान यह है कि प्राचीनकाल में प्रायः ग्रन्थकारों के द्वारा अपने ग्रन्थों में स्वयं के तथा स्वगुरु के नाम का उल्लेख करने की परम्परा नहीं थी। षट्खण्डागम के कर्त्ता पुष्पदन्त और भूतबलि, कसायपाहुड के कर्त्ता गुणधर, तत्त्वार्थसूत्रकार गृध्रपिच्छ, आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपादस्वामी आदि दिगम्बराचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में स्वनाम एवं स्वगुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार पाणिनि ने अष्टाध्यायी में, पतञ्जलि ने योगदर्शन में और वाल्मीकि ने रामायण में अपने गुरु के नाम का निर्देश नहीं किया।

दशम अध्याय—आचार्य कुन्दकुन्द के समय के विषय में अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं। डॉ० के० बी० पाठक, मुनि कल्याणविजय जी, पं० दलसुख मालणिया, डॉ० आर० के० चन्द्र एवं डॉ० सागरमल जी ने कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल विक्रम की छठी शती (५वीं शती ई० का उत्तरार्ध) माना है। प्रो० एम० ए० ढाकी ने तो कुन्दकुन्द को आठवीं शती ई० में ढकेलने का प्रयत्न किया है। श्वेताम्बराचार्य हस्तीमल जी ने उन्हें पहले ई० सन् ४७३ में उत्पन्न बतलाया, बाद में उनका उत्पत्तिकाल ई०

सन् ७१३ मान लिया। प्रो० हीरालाल जी जैन ने कुन्दकुन्द का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी बतलाया है, जब कि ब्र० भूरामल जी (आचार्य श्री ज्ञानसागर जी) ने उन्हें श्रुतकेवली भद्रबाहु का तथा पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भद्रबाहु-द्वितीय का साक्षात् शिष्य मानकर उनका समकालीन माना है। ये सभी मत असमीचीन हैं।

ई० सन् १८८५ में राजपूताना की यात्रा के समय श्री सेसिल बेण्डल (Mr. Cecil Bendall) को जयपुर के पण्डित श्री चिमनलाल जी ने मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, नन्दी-आम्नाय और बलात्कारगण की दो पट्टावलियाँ प्रदान की थीं। श्री बेण्डल ने वे प्रो० (डॉ०) ए० एफ० रूडाल्फ हॉर्नले (Rudolf Hoernle) को सौंप दीं। प्रो० हार्नले ने उन पट्टावलियों का समस्त विवरण अँगरेजी में एक तालिका में निबद्ध किया और उसे तत्कालीन शोधपत्रिका 'The Indian Antiquary, Vol. XX, october 1891' में प्रकाशित कराया। इस (इण्डियन ऐण्टिक्वेटी में प्रकाशित) तालिकाबद्ध पट्टावली में बतलाया गया है कि कुन्दकुन्द का जन्म ईसा से ५२ वर्ष पूर्व हुआ था और ईसा से ८ वर्ष पहले ४४ वर्ष की आयु में वे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे तथा ५१ वर्ष, १० मास एवं १० दिन तक आचार्यपद पर आसीन रहे। उसके ५ दिन बाद स्वर्ग सिधार गये। इस प्रकार उनका जीवनकाल ९५ वर्ष, १० मास और १५ दिन था।

आचार्य कुन्दकुन्द के इस समय की पुष्टि साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से होती है। दशम अध्याय में इन्हीं प्रमाणों को प्रस्तुत कर आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध तक) निर्धारित किया गया है और उपर्युक्त विद्वानों द्वारा प्रस्तुत समस्त विरोधी मतों को उनके आधारभूत हेत्वाभासों का युक्ति-प्रमाणपूर्वक विस्तार से निरसन करते हुए निरस्त किया गया है।

श्वेताम्बर विद्वान् पं० दलसुख मालवणिया ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में वर्णित जैनदर्शन के स्वरूप को तत्त्वार्थसूत्र (उनके अनुसार तीसरी-चौथी शताब्दी ई०) में वर्णित जैनदर्शन के स्वरूप की अपेक्षा विकसित मानकर कुन्दकुन्द को उमास्वाति से परवर्ती (पाँचवीं शती ई०) सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार डॉ० सागरमल जी ने गुणस्थानसिद्धान्त और नय-प्रमाण-सप्तभंगी को जिनोपदिष्ट न मानकर छद्मस्थ आचार्यों द्वारा विकसित बतलाया है और कहा है कि तत्त्वार्थसूत्र में ये दोनों सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होते, जब कि कुन्दकुन्दसाहित्य में उपलब्ध होते हैं, अतः कुन्दकुन्द उमास्वाति से उत्तरवर्ती (५वीं शती ई० के) हैं। दशम अध्याय में इन तीनों विकासवादों को अखण्ड्य प्रमाणों द्वारा मिथ्या सिद्ध किया गया है, जिससे कुन्दकुन्द के अस्तित्व

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को ईसा की पाँचवीं शताब्दी में सिद्ध करने का प्रयत्न धराशायी हो जाता है और उनके ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में विद्यमान होने का तथ्य अक्षुण्ण रहता है।

एकादश अध्याय—षट्खण्डागम को केवल श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी ने यापनीयग्रन्थ माना है। उनका प्रमुख तर्क यह है कि उसके प्रथम खण्ड 'सत्प्ररूपणा' (पुस्तक १) के ९३वें सूत्र में मणुसिणी (मनुष्यस्त्री) में संयत-गणुस्थान बतलाये गये हैं। 'मणुसिणी' शब्द का अर्थ केवल द्रव्यस्त्री है, उसे जो भावस्त्री का भी वाचक माना गया है, वह गलत है। इससे सिद्ध है यह ग्रन्थ स्त्रीमुक्तिसमर्थक यापनीयसम्प्रदाय का है। इसे स्त्रीमुक्ति-समर्थक श्वेताम्बरसम्प्रदाय का इसलिए नहीं माना जा सकता कि यह शौरसेनी प्राकृत में है। श्वेताम्बरसम्प्रदाय के सभी प्राकृतग्रन्थ अर्धमागधी में रचे गये हैं।

एकादश अध्याय में इस तर्क का निरसन करने के लिए अनेक युक्तिप्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि जो द्रव्य (शरीर) से स्त्री है, उसे तो षट्खण्डागम में 'मणुसिणी' कहा ही गया है, किन्तु जो द्रव्य से स्त्री नहीं हैं, अपितु पुरुष है, तथापि स्त्रीवेदनोकषाय के उदय से स्त्रीत्वभाव से युक्त है, उसे भी 'मणुसिणी' शब्द से अभिहित किया गया है। यह भी दर्शाया गया है कि ऐसे मनुष्यों के लिए सर्वार्थसिद्धि (१/७/२६/पृ.१७), तत्त्वार्थराजवार्तिक (९/७/११/पृ.६०५) आदि अन्य दिगम्बरजैन ग्रन्थों में भी 'मानुषी' शब्द प्रयुक्त हुआ है तथा इस प्रकार के मनुष्य, लोक में भी मिलते हैं। षट्खण्डागम के उपर्युक्त सूत्र में ऐसे ही स्त्रीत्वभाव से युक्त पुरुषशरीरधारी मनुष्यों को 'मणुसिणी' शब्द से अभिहित करते हुए उनमें संयतगुणस्थानों का कथन किया गया है। अतः षट्खण्डागम स्त्रीमुक्ति-प्रतिपादक ग्रन्थ नहीं है।

किसी मनुष्य का स्त्रीवेदनोकषाय-नामक कर्म के उदय से भाव से स्त्री होना और पुरुषांगोपांग-नामकर्म के उदय से द्रव्य (शरीर) से पुरुष होना वेदवैषम्य कहलाता है। कर्मभूमि के किसी-किसी गर्भज संज्ञी-असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य मे ऐसा वेदवैषम्य होता है, यह दिगम्बरजैन-कर्मसिद्धान्त का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस वेदवैषम्य के कारण लोक में दो प्रकार के पुरुष मिल सकते हैं-एक वह, जो मन (भाव) और शरीर (द्रव्य) दोनों से पुरुष हो और दूसरा वह, जो मन से स्त्री हो, लेकिन शरीर से पुरुष। इन दोनों ही प्रकार के पुरुषों का मोक्षसंभव है। किन्तु जो मनुष्य, भाव से पुरुष हो, परन्तु द्रव्य से स्त्री, उसका मोक्ष संभव नहीं है।

इस वेदवैषम्य को यापनीय-आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन (९वीं शताब्दी ई०) और बीसवीं शती ई० के दिगम्बरजैन विद्वान् प्रो० (डॉ०) हीरालाल जी जैन ने अमान्य

किया है। इन दोनों विद्वानों की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियों का सप्रमाण-सयुक्तिक निरसन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

इस अध्याय में षट्खण्डागम में उपलब्ध उन सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है, जो यापनीयमत के विरुद्ध हैं और इस बात के अखण्ड्य प्रमाण हैं कि षट्खण्डागम यापनीयपरम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बरपम्परा का ग्रन्थ है। यहाँ यह भी सिद्ध किया गया है कि षट्खण्डागम की रचना ईसापूर्व प्रथम शती के पूर्वार्ध में हुई थी और यापनीयसम्प्रदाय का जन्म ईसोत्तर पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था। इस कारण भी षट्खण्डागम का यापनीयग्रन्थ होना असंभव है।

डॉ० सागरमल जी ने षट्खण्डागम को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए और भी जो तर्क उपस्थित किये हैं, उन सबका निरसन इस अध्याय में किया गया है।

द्वादश अध्याय—डॉ० सागरमल जी ने 'कसायपाहुड' को भी यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ बतलाया है और इसके समर्थन में यह तर्क रखा है कि उसमें स्त्री, पुरुष और नपुंसक के अपगतवेदी होकर चतुर्दश गुणस्थान तक पहुँचने की बात कही गयी है, जो उसके स्त्रीमुक्ति-समर्थक होने का प्रमाण है। चूँकि वह अर्धगामधी प्राकृत में न होकर शौरसैनी प्राकृत में है, इसलिए श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, अपितु यापनीयपरम्परा का है।

उक्त मत का निरसन करने के लिए इस अध्याय में यह प्रमाण प्रस्तुत किया गया है कि कसायपाहुड में स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इन तीन भाववेदों (नोकषायों) का पृथक्-पृथक् अस्तित्व एवं गुणस्थानसिद्धान्त स्वीकार किया गया है। ये दोनों बातें यापनीयों को अमान्य हैं। अपगतवेदत्व भी वेदत्रय के अस्तित्व की मान्यता और गुणस्थान- सिद्धान्त पर आश्रित होने से यापनीयमत के विरुद्ध है, अतः कसायपाहुड यापनीयपरम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

श्वेताम्बरमुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी ने कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बरग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके द्वारा विन्यस्त हेतुओं का सप्रमाण निरसन सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने अपने एक लेख में किया है। यह लेख भी प्रस्तुत अध्याय में ज्यों का उद्धृत किया गया है।

तृतीय खण्ड की विषयवस्तु

इस खण्ड में तेरहवें अध्याय से लेकर पच्चीसवें अध्याय तक कुल तेरह अध्याय हैं।

त्रयोदश अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में इस भ्रान्ति का निवारण किया गया है कि भगवती-आराधना यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को सर्वप्रथम दिगम्बर विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी ने यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ घोषित किया था। फिर तो श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी, दिगम्बर विद्वान् प्रो० हीरालाल जी जैन, दिगम्बर विदुषी श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया, श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी जैन आदि ने भी इसे यापनीयसम्पद्राय का ग्रन्थ मान लिया। इसके समर्थन में इन सब विद्वानों ने उन्हीं हेतुओं का अनुसरण किया है, जो पं० नाथूराम जी प्रेमी ने प्रस्तुत किये हैं।

प्रेमी जी ने जो प्रमुख तर्क दिया है, वह यह है कि भगवती-आराधना में मुनि के लिए सवस्त्र अपवादलिंग का विधान है। किन्तु यह उनकी महाभ्रान्ति है। भगवती-आराधना में मुनि के लिए सवस्त्र अपवादलिंग का विधान नहीं है, अपितु मुनि के नाग्न्यलिंग को उत्सर्गलिंग और श्रावक के सवस्त्रलिंग को अपवादलिंग शब्द से अभिहित किया गया है। इसकी पुष्टि भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य तथा टीकाकार अपराजित सूरि के अनेक वचनों से की गयी है। इन दोनों आचार्यों ने मुनि के लिए आचेलक्य को अनिवार्य बतलाया है, अपवादलिंग का कोई विकल्प नहीं रखा, जिससे सिद्ध है कि भगवती-आराधना दिगम्बरपम्परा का ग्रन्थ है, यापनीयपरम्परा का नहीं।

प्रेमी जी ने दूसरा तर्क देते हुए कहा कि 'भगवती-आराधना की कई गाथाएँ दिगम्बरजैनमत के विरुद्ध हैं और अनेक गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों से ग्रहण की गयी हैं। यह यापनीयग्रन्थ में ही संभव है।' यह तर्क भी भ्रान्ति से परिपूर्ण है। जिन गाथाओं को दिगम्बरजैनमत के विरुद्ध बतलाया गया है, वे दिगम्बरमत के सर्वथा अनुकूल हैं तथा जो गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों से गृहीत बतलायी गयी हैं, वे दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद से पूर्व की मूल-अचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा से आयी हैं। अतः भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं है। इन तथ्यों की सिद्धि अनेक युक्ति-प्रमाणों से प्रस्तुत अध्याय में की गयी है। भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रेमी जी द्वारा प्रस्तुत सभी तर्कों का निरसन यहाँ किया गया है। डॉ० सागरमल जी ने भी दो नये हेतु जोड़े हैं, उनकी अप्रामाणिकता भी उद्घाटित की गयी है।

भगवती-आराधना में सापवाद सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति केवलिभुक्ति आदि का निषेध किया गया है, जो यापनीयमत के सिद्धान्त हैं। इसमें यापनीयों को अमान्य गुणस्थानसिद्धान्त, वेदत्रय एवं वेदवैषम्य को मान्य किया गया है। इन लक्षणों से स्पष्टतः सिद्ध होता है कि भगवती-आराधना दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है, यापनीयपरम्परा का नहीं। इन सबके उदाहरण इस अध्याय में विस्तार से प्रस्तुत किये गये हैं।

चतुर्दश अध्याय—जिन विद्वानों ने भगवती-आराधना को यापनीयग्रन्थ माना है, उन्होंने ही उसके टीकाकार अपराजितसूरि को भी यापनीय आचार्य कहा है। इसका प्रमुख कारण यह बतलाया है कि अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों से वे उद्धरण दिये हैं, जिनमें यह कहा गया है कि साधु विशेष परिस्थितियों में अपवादरूप से वस्त्र धारण कर सकता है। इस प्रकार उन्होंने श्वेताम्बर-आगमों के आधार पर विशेष परिस्थिति में साधु के अपवादरूप से वस्त्रधारण को उचित ठहराया है। श्वेताम्बर-आगमों के विधान को श्वेताम्बर के अतिरिक्त वही व्यक्ति मान्यता दे सकता है, जो यापनीय हो, अतः सिद्ध है कि अपराजितसूरि यापनीय हैं।

उपर्युक्त विद्वानों की यह मान्यता भी महान् भ्रान्ति का परिणाम है। प्रस्तुत अध्याय में इसका निराकरण किया गया है। निराकरण हेतु सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि अपराजित सूरि ने श्वेताम्बर-आगमों से उद्धरण देकर साधु के लिए विशेष परिस्थिति में वस्त्रधारण का औचित्य नहीं ठहराया है, अपितु श्वेताम्बर शंकाकार (**'अथैवं मन्यसे पूर्वागमेषु---'** वि.टी./भ.आ./गा.४२३/पृ.३२३, ३२४) का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि श्वेताम्बर-आगमों में भी मोक्ष के लिए अचेलत्व को आवश्यक बतलाया गया है और भिक्षुओं को वस्त्रग्रहण की अनुमति विशेष परिस्थितियों में ही दी गयी है। वे विशेष परिस्थितियाँ तीन हैं- १. नग्न रहने में लज्जा की अनुभूति होना, २. पुरुषचिह्न का अशोभनीय होना और ३. परीषहसहन में असमर्थ होना। किन्तु विशेष परिस्थिति में जो उपकरण ग्रहण किया जाता है, उसके ग्रहण की विधि तथा ग्रहण किये गये उपकरण के त्याग का कथन भी आगम में आवश्यक कहा गया है। अतः जब आगम के आधार पर विशेष परिस्थिति में साधु के लिए वस्त्रग्रहण का विधान बताया जाता है, तब उसके त्याग का विधान भी अवश्य बताया जाना चाहिए। (वि.टी./भ.आ./गा.४२३/पृ.३२५)। अपराजितसूरि ने 'अचेलता' के विरोधी श्वेताम्बरागम-वचन को स्पष्ट शब्दों अप्रामाणिक ठहराया है। श्वेताम्बरपक्ष को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि यदि आप यह मानते हैं कि सूत्र (आगम) में पात्र की प्रतिष्ठापना कही गयी है, अतः संयम के लिए पात्रग्रहण आगमोक्त सिद्ध होता है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि अचेलता का अर्थ है परिग्रहत्याग, और पात्र परिग्रह है, अतः उसका भी त्याग आगमसिद्ध ही है-**"पात्रप्रतिष्ठापना सूत्रेणोक्तेति संयमार्थं पात्रग्रहणं सिध्यतीति मन्यसे नैव, अचेलता नाम परिग्रहत्यागः, पात्रं च परिग्रह इति तस्यापि त्याग सिद्ध एवेति।"** (वि.टी./भ.आ./गा. ४२३/पृ.३२५)।

इस प्रकार अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों के आधार पर दिगम्बरमत की ही पुष्टि की है, श्वेताम्बरमत की नहीं। उन्होंने जोर देकर कहा है कि मुक्ति का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अभिलाषी मुनि वस्त्र ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वस्त्र मुक्ति का उपाय नहीं है तथा केवल वस्त्र का त्याग करने और शेष परिग्रह रखने से जीव संयत (मुनि) नहीं होता– "**मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्।**" (वि.टी./भ.आ./गा.८४)। "**नैव संयतो भवतीति वस्त्रमात्रत्यागेन शेषपरिग्रहसमन्वितः।**" (वि.टी./भ.आ./गा. १११८)। इन वचनों से स्पष्ट है कि अपराजितसूरि ने श्वेताम्बर-आगमों के प्रामाण्य को स्वीकार नहीं, अस्वीकार किया है। अतः यह कहना कि अपराजितसूरि श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते हैं, एक हिमालयाकार भ्रान्ति है।

अपराजितसूरि ने विजयोदयाटीका में सवस्त्रमुक्ति-निषेध के अतिरिक्त स्त्रीमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं केवलिभुक्ति का भी निषेध किया है, जो यापनीयमत के विरुद्ध है। प्रस्तुत अध्याय में इन सबके प्रमाण प्रस्तुत कर सिद्ध किया गया है कि अपराजित-सूरि पक्के दिगम्बर थे, उन्हें जो यापनीय मान लिया है, वह बहुत बड़ी भ्रान्ति है।

पञ्चदश अध्याय—इस अध्याय में उन हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता प्रकट की गयी है, जो यापनीयपक्षधर विद्वानों ने मूलाचार को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये हैं। इसके साथ उन प्रमाणों का साक्षात्कार कराया गया है, जिनसे सिद्ध होता है कि मूलाचार शतप्रतिशत दिगम्बरग्रन्थ है।

षोडश अध्याय—इस अध्याय में तत्त्वार्थसूत्र को श्वेताम्बर, यापनीय एवं कपोलकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए उपस्थित किये गये हेतुओं का निरसन कर उसे दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने-वाले प्रमाण और युक्तियाँ विन्यस्त की गयी हैं।

सप्तदश अध्याय—इस अध्याय में उपर्युक्त न्याय से तिलोयपण्णत्ती के कर्त्ता यतिवृषभ को दिगम्बराचार्य सिद्ध किया गया है।

अष्टादश अध्याय—इस अध्याय में सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन को श्वेताम्बर, यापनीय एवं उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का आचार्य सिद्ध करनेवाले हेतुओं को असत्य या हेत्वाभास सिद्धकर वे प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन दिगम्बराचार्य हैं, अतः सन्मतिसूत्र दिगम्बरग्रन्थ है। इसमें रत्नकरण्डश्रावकार को स्वामी समन्तभद्र की कृति न मानने के पक्ष में रखे गये तर्कों का भी निरसन किया गया है और यह भी स्थापित किया गया है कि सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन पूज्यपाद स्वामी से पूर्ववर्ती नहीं, अपितु उत्तरवर्ती हैं।

इसी प्रकार यापनीयग्रन्थ होने के पक्ष में रखे गये हेतुओं का निरसन कर दिगम्बर-ग्रन्थसाधक प्रमाणों के प्रस्तुतीकरण द्वारा **एकोनविंश अध्याय** में रविषेणकृत पद्मपुराण

(पद्मचरित) को, **विंश अध्याय** में जटासिंहनन्दिकृत वराङ्गचरित को, **एकविंश अध्याय** में पुन्नाटसंघीय जिनसेनरचित हरिवंशपुराण को, **द्वाविंश अध्याय** में स्वयम्भू-निर्मित पउमचरिउ को, **त्रयोविंश अध्याय** में हरिषेण-प्रणीत बृहत्कथाकोश को, **चतुर्विंश अध्याय** में छेदपिण्ड, छेदशास्त्र एवं प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी को और **पंचविंश अध्याय** में बृहत्प्रभाचन्द्रकृत तत्त्वार्थसूत्र को दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध किया गया है।

इस खण्ड के अन्त में भी **शब्दविशेष-सूची** तथा **प्रयुक्त ग्रन्थों एवं शोधपत्रिकाओं की सूची** निबद्ध की गयी हैं।

संकेताक्षर-विवरण

अ.--- / प्र.---	अध्याय क्रमांक / प्रकरण क्रमांक।
अ.---/ प्र.---/ शी. ---	अध्याय क्रमांक / प्रकरण क्रमांक / शीर्षक क्रमांक।
अनु.	अनुच्छेद (पैराग्राफ)।
अभि. रा. को. /---/---	अभिधान राजेन्द्र कोष / भाग क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक।
आ. ख्या.	आत्मख्याति व्याख्या।
आचारांग / ---/ ---/---/---	श्रुतस्कन्ध क्रमांक / अध्ययन क्रमांक / उद्देशक क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
आव. चू. / उपो. निर्यु. / आव. सू. / पू. भा.	आवश्यकचूर्णि / उपोद्घातनिर्युक्ति / आवश्यकसूत्र / पूर्वभाग।
आव. निर्युक्ति	आवश्यकनिर्युक्ति
आ. वृ. / मूला.	आचारवृत्ति / मूलाचार।
आदि पु. / ---/---	आदिपुराण / पर्व क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
आतुरप्रत्या.	आतुरप्रत्याख्यान।
आ. मी.	आप्तमीमांसा।
आव. सू. /---/---	आवश्यकसूत्र / आवश्यक क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
इ. न. श्रुता.	इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार।
इण्डि. ऐण्टि.	दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी।
इष्टो.	इष्टोपदेश ।
ईशाद्यष्टो.	ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्।
उत्त. सू. /---/---	उत्तराध्ययनसूत्र / अध्ययन क्रमांक / गाथा क्रमांक।
ऋग्वेद /---/---/---	मंडल क्रमांक / सूक्त क्रमांक / ऋचा-क्रमांक।

क. पा.	कसायपाहुड।
कै. च. शास्त्री	सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।
क्र.	क्रमांक।
गुण. सिद्धा. : एक वि.	गुणस्थान सिद्धान्त : एक विश्लेषण।
गो. क.	गोम्मटसार - कर्मकाण्ड।
गो. जी.	गोम्मटसार - जीवकाण्ड।
चा. पा.	चारित्तपाहुड।
छान्दोग्योपनिषद् /---/---/---	अध्याय क्र. / खण्ड क्र. / वाक्य क्र. ।
ज. ध. / क.पा. /भा---	जयधवलाटीका / कसायपाहुड / भाग क्रमांक।
ज. ध. / क. पा. / भा. ---/ गा.---/ अनु. ---/ पृ. ---	जयधवला / कसायपाहुड / भाग क्रमांक / गाथा क्र./ अनुच्छेद क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक।
जाबालो.	जाबालोपनिषद्।
जी. त. प्र. / गो. क.	जीवतत्त्वप्रदीपिकावृत्ति / गोम्मटसार-कर्मकाण्ड।
जी. त. प्र. / गो. जी.	जीवतत्त्वप्रदीपिकावृत्ति / गोम्मटसार-जीवकाण्ड।
जै. आ. सा. म. मी.	जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा।
जै. ध. मौ. इ.	जैनधर्म का मौलिक इतिहास।
जै. ध. या. स.	जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय।
जै. शि. सं. / मा. च.	जैन-शिलालेख-संग्रह / माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, मुंबई।
जै. शि. सं. / भा. ज्ञा.	जैन-शिलालेख-संग्रह / भारतीय ज्ञानपीठ।
जै. स. या. सं. प्र.	''जैन सम्प्रदाय के यापनीयसंघ पर कुछ और प्रकाश'' (लेख)।
जै. सं. सं. सं. शोलापुर	जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर।
जै. सा. इ.	जैन साहित्य और इतिहास।
जै. सा. इ. — प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास —पं० नाथूराम प्रेमी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जै. सा. इ. (कै. च. शास्त्री)	जैनसाहित्य का इतिहास (सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री)।
जै. सा. इ. / पू. पी.	जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका।
जै. सा. इ. वि. प्र. / खं.१	जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश / प्रथमखंड।
जै. सि. को. /---/---	जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश / भाग क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक।
जै. सा. बृ. इ. / ---	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास / भाग क्रमांक।
जै. सि. भा. / भा. ---/ कि. ---	जैन सिद्धान्त भास्कर / भाग क्रमांक / किरण क्रमांक।
डॉ. सा. म. जै. अभि. ग्र.	डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ।
त. नि. प्रा.	तत्त्वनिर्णयप्रासाद।
त. दी.	तत्त्वदीपिकावृत्ति।
तत्त्वा. भाष्य.	तत्त्वार्थाधिगमभाष्य।
त. भाष्यवृत्ति	तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति।
त. र. दी./ षड्. समु. /---/---	तर्करहस्यदीपिका (गुणरत्नकृत टीका) / षड्दर्शन-समुच्चय / अधिकार-क्रमांक / पृष्ठक्रमांक।
त. रा. वा. /---/--- /---	तत्त्वार्थराजवार्तिक / अध्याय क्रमांक / सूत्र क्रमांक / वार्तिक क्रमांक
त. सू. ---/---	तत्त्वार्थसूत्र / अध्याय क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
तत्त्वार्थ	तत्त्वार्थसूत्र।
त. सू. / वि. स.	तत्त्वार्थसूत्र / विवेचनसहित।
त. सू. जै. स.	तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय।
ता. वृ.	तात्पर्यवृत्ति।
ति. प. /---/---	तिलोयपण्णत्ती / महाधिकार क्रमांक / गाथा क्रमांक।
ती. म. आ. प./---	तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा / खण्ड क्रमांक।

दं. पा.	दंसणपाहुड।
द्र. सं.	द्रव्यसंग्रह।
द्वि. सं.	द्वितीय संस्करण।
दश. वै. सू.	दशवैकालिकसूत्र।
दि.	दिगम्बर।
धम्मपद-अट्ठकथा / भा.---/---/---	धम्मपद-अट्ठकथा / भाग क्र. / वग्ग क्र./ कथा क्र.
धवला / ष. खं./ पु.---	धवलाटीका / षट्खण्डागम / पुस्तक क्रमांक।
नि. सा.	नियमसार।
न्यायदीपिका /---/---	प्रकाश क्रमांक / अनुच्छेद क्रमांक।
न्या. वा. वृ.	न्यायावतारवार्तिकवृत्ति।
प. च. / ---/---/---/---	पउमचरिउ / भाग क्र./ सन्धि क्र. / दोहासमूह क्र./ दोहा क्रमांक।
प. पु./---/---	पद्मपुराण (पद्मचरित)/ भाग क्र./ पर्व क्र./ श्लोक क्र.।
पद्मपुराण /---/---/---/---	भाग क्रमांक / खण्ड क्रमांक (भूमिखण्ड) / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
प. प्र./---/---	परमात्मप्रकाश / महाधिकार क्रमांक / दोहा क्रमांक।
परमा. प्र.	परमात्मप्रकाश।
पं. का.	पञ्चास्तिकाय।
पं. र. च. जै. मुख्तार : व्यक्ति. कृति.	पण्डित रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
परि. पर्व	परिशिष्टपर्व।
पा. टि.	पादटिप्पणी।
पुरा. जै. वा. सू.	पुरातन-जैन-वाक्य-सूची।
पु.	पुस्तक।
पृ.	पृष्ठक्रमांक।
प्र. सं.	प्रथम संस्करण।

प्रव. परी. /---/---/---	प्रवचनपरीक्षा / भाग क्रमांक (पूर्व या उत्तर)/ विश्राम क्रमांक / गाथा क्रमांक।
प्र. सा. /---/---	प्रवचनसार / अधिकार क्रमांक / गाथा क्रमांक।
प्रस्ता.	प्रस्तावना।
प्रा. सा. इ.	प्राकृत साहित्य का इतिहास।
बा. अ.	बारस अणुवेक्खा।
बा. अणु.	बारस अणुवेक्खा।
बृ. क. को.	बृहत्कथाकोश।
बृहत्कल्पसूत्र /---/---	उद्देशक्रमांक / सूत्रक्रमांक।
बृ. कल्प./लघुभाष्यवृत्ति /---/---	बृहत्कल्पसूत्र / लघुभाष्यवृत्ति / उद्देशक्रमांक / गाथा-क्रमांक।
बृहदारण्यकोपनिषद्/---/---/---	अध्याय क्रमांक / ब्राह्मण क्रमांक / वाक्य क्रमांक।
बो. पा.	बोधपाहुड।
ब्रह्मसूत्र /---/---/---	अध्याय क्रमांक / पाद क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
भ. आ.	भगवती-आराधना।
भट्टा. सम्प्र.	भट्टारकसम्प्रदाय।
भ. बा. च. /---/---	भद्रबाहुचरित / परिच्छेद क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
भ. बा. क.	भद्रबाहुकथानक।
भा.	भाग।
भा. ज्ञा.	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली / वाराणसी।
भा. पु. /---/---/---	भागवतपुराण / स्कन्ध क्रमांक / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक या गद्यखण्ड क्रमांक ।
भा. पा.	भावपाहुड।
भा. इ. ए. दृ.	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन)।

भा. सं. जै. ध. यो. दा.	भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान।
महापुराण /---/---	सर्ग क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
महाभारत /---/---/---	पर्व क्रमांक / अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
मा. च.	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई।
मूला.	मूलाचार।
मूला. / पू.	मूलाचार / पूर्वार्ध।
मूला. / उत्त.	मूलाचार / उत्तरार्ध।
मो. पा.	मोक्खपाहुड।
या. औ. उ. सा.	यापनीय और उनका साहित्य।
यु. अनु.	युक्त्यनुशासन।
यो. सा.	योगसार
र. क. श्रा.	रत्नकरण्डश्रावकाचार।
लिं. पा.	लिंगपाहुड।
वरांगचरित /---/---	सर्ग क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
वायुपुराण /---/---	अध्याय क्रमांक / श्लोक क्रमांक।
वि. टी. / भ. आ.	विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना।
विशे. भा.	विशेषावश्यकभाष्य।
विष्णुपुराण /---/---/---	अंश क्र. / अध्याय क्र. / श्लोक क्र.।
व्या. प्र. /---/---/---	व्याख्याप्रज्ञप्ति / शतक क्रमांक / उद्देशक क्रमांक / प्रश्नोत्तर क्रमांक
शो. प्र.	शोलापुर प्रकाशन।
श्र. भ. म.	श्रमण भगवान् महावीर।
श्वे.	श्वेताम्बर।
ष. ख. /---/---,---,---	षट्खण्डागम / पुस्तक क्रमांक / खण्ड क्रमांक,

	भाग क्रमांक, सूत्र क्रमांक।
षट्. परि.	षट्खण्डागम-परिशीलन।
स. सा. /---	समयसार / गाथा क्रमांक।
समवायांग /---/---	समवाय क्रमांक / सूत्र क्रमांक।
स. तन्त्र	समाधितन्त्र (समाधिशतक)।
सं. सा. इ.– ब. दे. उ.	संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय।
स. सि. /---/---/---	सर्वार्थसिद्धि/अध्याय क्रमांक/ सूत्र क्रमांक/ अनुच्छेद क्रमांक।
सा. ध.	सागारधर्मामृत।
सुत्त. पा.	सुत्तपाहुड।
सूत्रकृतांग /---/---/---	श्रुतस्कन्ध क्रमांक/अध्ययन क्रमांक/उद्देशक क्रमांक।
स्त्रीनिर्वाण प्र.	स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।
स्था. सू./---/---/---	स्थानांगसूत्र/स्थान क्रमांक/उद्देशक्रमांक/सूत्र क्रमांक।
स्था. सू./---/---	स्थानांगसूत्र / स्थान क्रमांक / सूत्र क्रमांक ।
स्व. स्तो.	स्वयम्भूस्तोत्र।
स्वा. स. भ.	स्वामी समन्तभद्र।
ह. पु. (हरि. पु.)/---/---	हरिवंशपुराण / सर्गक्रमांक / श्लोकक्रमांक।
हारि. वृत्ति	हारिभद्रीय वृत्ति।
हेम. वृत्ति / विशे. भा.	मलधारी हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति / विशेषावश्यक-भाष्य।
Asp. of Jaino.	Aspects of Jainology.
F. N.	Foot Note.

त्रयोदश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

त्रयोदश अध्याय

भगवती-आराधना

प्रथम प्रकरण

भगवती-आराधना के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

क

यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु

भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य हैं, जैसा कि उन्होंने स्वयं ग्रन्थ के अन्त में कहा है।[१] इसे उन्होंने 'आराधना' और 'भगवती-आराधना'[२] दोनों नामों से अभिहित किया है। आचार्य अमितगति ने 'भगवती-आराधना' नाम का अनुकरण किया है। पं० आशाधर जी ने इसे 'मूलाराधना' नाम से उद्धृत किया है। विद्वानों ने इसका रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई० निर्धारित किया है।[३]

शिवार्य दिगम्बर-आचार्य थे और 'भगवती-आराधना' दिगम्बरग्रन्थ है। किन्तु पं० नाथूराम जी प्रेमी,[४] श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी, प्रो० हीरालाल जी जैन[५] डॉ० श्रीमती कुसुम पटोरिया[६] तथा श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी जैन ने इस

---

१. पुव्वायरियणिबद्धा उवजीवित्ता इमा ससत्तीए।
आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोइणा रइदा॥ २१६०॥ भगवती-आराधना।

२. आराधणा भगवदी एवं भत्तीए वण्णिदा संती।
संघस्स सिवज्जस्स य समाधिवरमुत्तमं देउ॥ २१६२॥ भगवती-आराधना।

३. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा / खण्ड २ / पृष्ठ १२७-१२८

४. जैन साहित्य और इतिहास (प्रथम संस्करण) / पृष्ठ ५६-६०।

५. मुनि कल्याणविजय जी एवं प्रो. हीरालाल जी जैन ने भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य एवं बोटिक सम्प्रदाय के संस्थापक शिवभूति को एक ही व्यक्ति माना है। उनके अनुसार यह सम्प्रदाय सचेलाचेलमार्गी था। यही आगे चलकर कुन्दकुन्द के समय (मुनि जी के अनुसार ५ वीं शती ई० तथा प्रोफेसर सा० के अनुसार द्वितीय शती ई०) में **यापनीय** नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रो० हीरालाल जी का मत—देखिये, अध्याय १० / प्रकरण ८ / शीर्षक १.१. एवं १.२।

६. यापनीय और उनका साहित्य / पृ.१२५-१३२।

ग्रन्थ को यापनीय-आचार्यकृत बतलाया है,[७] जो सर्वथा मिथ्या है। अन्तिम चार विद्वानों ने प्रेमी जी द्वारा प्रस्तुत हेतुओं को ही पुनरुक्त किया है। डॉ० सागरमल जी ने कुछ नये हेतु भी जोड़े हैं। इन सबको उन्होंने अपने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ में संगृहीत किया है।

प्रेमी जी ने भगवती-आराधना को यापनीयमत का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए अपने ग्रन्थ 'जैन साहित्य और इतिहास' (प्रथम संस्करण / पृ.५६-६० तथा द्वितीय संस्करण/ पृ.६८-७३) में निम्नलिखित हेतु प्रस्तुत किये हैं—

१. शिवार्य तथा उनके गुरुओं के नाम दिगम्बरपट्टावलियों या गुर्वावलियों में नहीं मिलते।

२. यापनीय-आचार्य (अपराजित सूरि) द्वारा भगवती-आराधना की टीका की गई है।

३. भगवती-आराधना की अनेक गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाओं से मिलती हैं।

४. यापनीय-आचार्य शाकटायन ने शिवार्य के गुरु सर्वगुप्त का उल्लेख किया है।

५. शिवार्य ने अपने लिए 'पाणितलभोजी' विशेषण का प्रयोग किया है।

६. श्वेताम्बरसाहित्य में प्रसिद्ध मेतार्य मुनि की कथा भगवती-आराधना में मिलती है।

७. उसमें क्षपक के लिए चार मुनियों द्वारा आहार लाये जाने का विधान दिगम्बरमत के विरुद्ध है।

८. अवमौदर्य-कष्ट को साम्यभाव से सहन करते हुए भद्रबाहु के समाधिमरण की कथा भगवती-आराधना को छोड़कर दिगम्बरसम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती।

९. उसमें मुनि के लिए सवस्त्र अपवादलिंग का विधान है।

१०. भगवती-आराधना में 'आचार', 'जीतशास्त्र' आदि श्वेताम्बर-ग्रन्थों का उल्लेख है।

११. भगवती-आराधना में वर्णित मृत मुनि के शवसंस्कार की विजहना-विधि दिगम्बरमत के प्रतिकूल है।

---

७. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय / पृ. १२०-१३०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१२. भगवती-आराधना की '**देसामासियसुत्तं**' गाथा (११२३) के '**तालपलंब-सुत्तम्मि**' पद में श्वेताम्बरग्रन्थ 'बृहत्कल्प' के सूत्र का उल्लेख है।

१३.'**आराधणापुरस्सर**' गाथा (७५२) की विजयोदयाटीका में श्वेताम्बरग्रन्थ 'अनुयोगद्वारसूत्र' का निर्देश किया गया है।

१४.'**उत्तरगुणउज्जमणे**' गाथा (११८) की विजयोदयाटीका में '**पंचवदाणिजदीणं**' इत्यादि 'आवश्यकसूत्र' (श्वेताम्बरग्रन्थ) की गाथा उद्धृत की गई है।

१५. '**अंगसुदे बहुविधे**' गाथा (४९९) की विजयोदयाटीका में श्रुत के 'आचारांग' आदि भेदों का वर्णन है। ये नाम श्वेताम्बरपरम्परा के आगमों के हैं।

डॉ० सागरमल जी ने अपने ग्रन्थ 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' (पृ.१२१, १२९) में ये दो नये हेतु और जोड़े हैं—

१६. 'शिवार्य' जैसे आर्यान्त तथा 'जिननन्दी' जैसे नन्द्यन्त नाम यापनीयसम्प्रदाय में ही मिलते हैं।

१७. भगवती-आराधना में श्वेताम्बर-प्रकीर्णक-ग्रन्थों की अनेक गाथाएँ हैं।

ख

सभी हेतु असत्य या हेत्वाभास

इनमें से कुछ हेतुओं का तो अस्तित्व ही नहीं है, अतः वे असत्य हैं और कुछ यापनीयग्रन्थ के लक्षण नहीं हैं, क्योंकि वे अव्याप्ति, अतिव्याप्ति या असम्भव-दोष से युक्त हैं, इसलिए वे हेत्वाभास हैं। यापनीयग्रन्थ के लक्षण '**यापनीयसंघ का इतिहास**' नामक सप्तम अध्याय में बतलाये गये हैं। तदनुसार **जो श्वेताम्बरग्रन्थ न हो, फिर भी जिसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि सिद्धान्तों का विधान हो अथवा निषेध न किया गया हो, वह यापनीयग्रन्थ है और जिसमें इनका विधान न हो अथवा निषेध किया गया हो, वह यापनीयग्रन्थ नहीं, बल्कि दिगम्बरग्रन्थ है।**

भगवती-आराधना में यापनीयग्रन्थ के ये लक्षण उपलब्ध नहीं होते, अपितु उसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि का निषेध किया गया है, अतः वह यापनीयग्रन्थ नहीं, दिगम्बरग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त कुछ बहिरंग प्रमाणों से भी उसका दिगम्बराचार्यकृत होना सिद्ध होता है। यहाँ पहले इन अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणों को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनसे सिद्ध होता है कि भगवती-आराधना दिगम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है। तत्पश्चात् यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में जो हेतु प्रस्तुत किये गये हैं, उनकी असत्यता एवं हेत्वाभासता का प्रदर्शन किया जायेगा।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ग

दिगम्बरग्रन्थ होने के अन्तरंग प्रमाण

यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन

१

सवस्त्रमुक्तिनिषेध

१.१. आचेलक्य मुनि का अनिवार्य प्रथम धर्म

यापनीयमत में मुनियों के लिए अचेललिंग के साथ सचेललिंग भी स्वीकार किया गया है, किन्तु भगवती-आराधना में एकमात्र अचेललिंग का ही विधान है। उसकी निम्नलिखित गाथा में कहा गया है कि जो आचार्य सदा दस प्रकार के स्थितिकल्प में स्थित रहता है, वह आचारवान् है। वह आचार्य समिति-गुप्तिरूप प्रवचन-माताओं में तत्पर रहता है—

दसविहठिदिकप्पे वा हवेज्ज जो सुट्ठिदो सयायरिओ।
आयारवं खु एसो पवयणमादासु आउत्तो॥ ४२२॥ भ.आ.।

वे दस स्थितिकल्प इस प्रकार हैं—

आचेलक्कुद्देसिय-सेज्जाहर-रायपिंडकिरियम्मे।
वद-जेट्ठ-पडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो॥ ४२३॥ भ.आ.।

अनुवाद—"आचेलक्य (नग्नता), औद्देशिक (उद्दिष्ट भोजन) का त्याग, शय्यागृह का त्याग, राजपिण्ड (राजा के आहार या राजस आहार) का त्याग, कृतिकर्म (गुरु की विनय-सेवा करना), व्रत, ज्येष्ठता (आर्यिका की अपेक्षा मुनि की ज्येष्ठता) का पालन, प्रतिक्रमण, मासकल्प (छह ऋतुओं में एक-एक मास से अधिक एक स्थान पर न ठहरना), पर्युषणाकल्प (वर्षाकाल में एक स्थान पर चार-मास तक निवास करना), ये दस स्थितिकल्प हैं।"[८]

'**कल्प**' का अर्थ है साध्वाचार ("**कल्पः साध्वाचारः**"—कल्पसूत्र/कल्पप्रदीपिका-वृत्ति/गाथा १) और **स्थिति** का अर्थ है नियोगतः अर्थात् अनिवार्यतया पालन करने योग्य (नियोगः = अनिवार्यता / आप्टे-संस्कृत-हिन्दी-कोश)। इस प्रकार **स्थितिकल्प** का अर्थ है मुनि के लिए अनिवार्यतया पालन करने योग्य आचार, जैसा कि अपराजित सूरि ने स्पष्ट किया है—

---

८. इन के अर्थों का प्रतिपादन प्रस्तुत गाथा की विजयोदया टीका में किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"**नियोगतो मुमुक्षूणां यत्कर्त्तव्यतया स्थितं तत्स्थितमुच्यते स्थितकल्पः स्थित-प्रकारः।**" (वि. टी./भ.आ./गा. 'देसामासियसुत्तं' १११७)। तात्पर्य यह कि शिवार्य ने आचेलक्य को **स्थितकल्प** या **स्थितिकल्प** कहकर यह सूचित किया है कि वस्त्रत्याग किये बिना कोई भी मुमुक्षु 'मुनि' नहीं कहला सकता। यह भगवती-आराधना में सवस्त्र-मुक्तिनिषेध का ज्वलन्त प्रमाण है।

और आचेलक्य (नग्नता) शब्द से केवल वस्त्रत्याग अभिप्रेत नहीं है, वह तो उपलक्षण है। अतः उससे वस्त्र, पात्र, आभूषण, धन-धान्य आदि समस्त परिग्रह का त्याग सूचित किया गया है। इसका स्पष्टीकरण भगवती-आराधनाकार ने निम्नलिखित गाथा में किया है—

देसामासियसुत्तं आचेलक्कंति तं खु ठिदिकप्पे।
लुत्तोत्थ आदिसद्दो जह तालपलंबसुत्तम्मि॥ १११७॥ भ.आ.।

अनुवाद—"दस स्थितिकल्पों में जो **आचेलक्य** कल्प है वह देशामर्शक सूत्र है अर्थात् एकदेश का कथन कर सम्पूर्ण को सूचित करनेवाला शब्द है। इसे उपलक्षण कहते हैं। अभिप्राय यह कि 'आचेलक्य' में **चेल** शब्द परिग्रह का उपलक्षण है, अर्थात् वह चेल के अतिरिक्त पात्र, दण्ड आदि समस्त परिग्रह का सूचक है। अतः 'आचेलक्य' का अर्थ समस्त परिग्रह का त्याग है। जैसे **तालप्रलम्ब** (ताड़वृक्ष की शाखा) शब्द में 'आदि' शब्द विलुप्त है, तो भी उससे सभी प्रकार की वनस्पतियों का द्योतन होता है, वैसे ही **चेल** शब्द में 'आदि' शब्द का अभाव है, फिर भी वह समस्त परिग्रह का द्योतक है।"

अपराजितसूरि ने यह अर्थ निम्नलिखित व्याख्या द्वारा ज्ञापित किया है-

"**चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं, तेन सकलग्रन्थत्याग आचेलक्यशब्दस्यार्थः।**"[९]

अनुवाद—"**चेल** शब्द का प्रयोग परिग्रह का उपलक्षण है, इसलिए सकल परिग्रह का त्याग 'आचेलक्य' शब्द का अर्थ है।"

आचेलक्यरूप प्रथम स्थितिकल्प को समस्त मुमुक्षुओं के लिए अनिवार्य बतलाते हुए शिवार्य कहते हैं—

चेलादिसव्वसंगच्चाओ पढमो हु होदि ठिदिकप्पो।
इहपरलोइयदोसे सव्वे आवहदि संगो हु॥ १११६॥ भ.आ.।

अनुवाद—"वस्त्रादि सर्व परिग्रह का त्याग प्रथम स्थितिकल्प है, अर्थात् मुमुक्षुओं के लिए अनिवार्यतया पालनीय सर्वप्रथम आचार है, क्योंकि परिग्रह इस लोक और परलोक, दोनों लोकों को बिगाड़नेवाले दोष ढोकर लाता है।"

९. विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा.१११७ / पृ. ५७६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिवार्य मोक्ष के लिए वस्त्रादि-सर्व-परिग्रह-त्याग को सर्वप्रथम आवश्यक मानते हैं, अर्थात् उन्हें सवस्त्रमुक्ति मान्य नहीं है। यदि मान्य होती तो वे वस्त्रादिपरिग्रह को परलोक को बिगाड़नेवाला न कहते।

निम्नलिखित गाथा में वस्त्रादित्याग के बिना मुनि-पद की प्राप्ति असंभव बतलायी गयी है—

ण य होदि संजदो वत्थमित्तचागेण सेससंगेहिं।
तम्हा आचेलक्कं चाओ सव्वेसि होइ संगाणं॥ १११८॥ भ.आ.।

अनुवाद—"मात्र वस्त्र का त्याग करने से और शेष परिग्रह रखने से जीव संयत (मुनि) नहीं होता। इसलिए आचेलक्य में समस्तपरिग्रह का त्याग गर्भित है।"

इस गाथा की 'विजयोदया' टीका में अपराजित सूरि ने यह भी स्पष्ट किया है कि महाव्रतों का कथन करनेवाले सूत्र इस बात के ज्ञापक हैं कि **आचेलक्य** शब्द द्वारा सर्वपरिग्रह के त्याग का उपदेश दिया गया है।[१०] अर्थात् अपरिग्रह-महाव्रत वस्त्रपात्रादि-समस्तपरिग्रह के त्याग से निष्पन्न होता है, अतः वस्त्रपात्रादि धारण करनेवाला कोई भी पुरुष महाव्रती नहीं हो सकता।

इस प्रकार ग्रन्थकार और टीकाकार दोनों ने वस्त्रपात्रादि-सर्वसंगत्याग के बिना मुनिपद या महाव्रतित्व की प्राप्ति असंभव बतलाकर सवस्त्रमुक्ति का निषेध किया है।

१.२. श्रावक का लिंग अपवादलिंग

शिवार्य के सवस्त्र-मुक्ति-निषेधक होने का एक बलवान् प्रमाण यह है कि जहाँ यापनीयमत में मुनियों के लिए अचेल और सचेल, इन दो लिंगों का विधान किया गया है, वहाँ शिवार्य ने मुनियों के लिए मात्र अचेललिंग का नियम बतलाया है और मुनियों के अचेललिंग को उत्सर्गलिंग तथा श्रावकों के सचेललिंग को अपवादलिंग संज्ञा दी है। इस तरह उन्होंने श्वेताम्बरों की इस मान्यता को निरस्त किया है कि मुनियों के भी स्थविरकल्प के रूप में अपवादलिंग होता है। शिवार्य ने श्रावक के ही लिंग को अपवादलिंग नाम दिया है, यह उनके द्वारा प्रतिपादित उत्सर्ग और अपवाद की निम्नलिखित परिभाषाओं से सिद्ध होता है—

१.२.१. **सपरिग्रह एवं मुनिनिन्दा-कारणभूत लिंग अपवादलिंग**—भगवती-आराधना में **उत्सर्ग** और **अपवाद** शब्द सामान्यनियम एवं विशेषनियम के वाचक नहीं

१०."किं च महाव्रतोपदेशप्रवृत्तानि च सूत्राणि ज्ञापकानि सर्वसङ्गत्यागः आचेलक्कमित्यत्र निर्दिष्ट इत्यस्य।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. १११८ / पृ. ५७४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिवार्य मोक्ष के लिए वस्त्रादि-सर्व-परिग्रह-त्याग को सर्वप्रथम आवश्यक मानते हैं, अर्थात् उन्हें सवस्त्रमुक्ति मान्य नहीं है। यदि मान्य होती तो वे वस्त्रादिपरिग्रह को परलोक को बिगाड़नेवाला न कहते।

निम्नलिखित गाथा में वस्त्रादित्याग के बिना मुनि-पद की प्राप्ति असंभव बतलायी गयी है—

ण य होदि संजदो वत्थमित्तचागेण सेससंगेहिं।
तम्हा आचेलक्कं चाओ सव्वेसि होइ संगाणं॥ ११९८॥ भ.आ.।

अनुवाद—"मात्र वस्त्र का त्याग करने से और शेष परिग्रह रखने से जीव संयत (मुनि) नहीं होता। इसलिए आचेलक्य में समस्तपरिग्रह का त्याग गर्भित है।"

इस गाथा की 'विजयोदया' टीका में अपराजित सूरि ने यह भी स्पष्ट किया है कि महाव्रतों का कथन करनेवाले सूत्र इस बात के ज्ञापक हैं कि **आचेलक्य** शब्द द्वारा सर्वपरिग्रह के त्याग का उपदेश दिया गया है।[१०] अर्थात् अपरिग्रह-महाव्रत वस्त्रपात्रादि-समस्तपरिग्रह के त्याग से निष्पन्न होता है, अतः वस्त्रपात्रादि धारण करनेवाला कोई भी पुरुष महाव्रती नहीं हो सकता।

इस प्रकार ग्रन्थकार और टीकाकार दोनों ने वस्त्रपात्रादि-सर्वसंगत्याग के बिना मुनिपद या महाव्रतित्व की प्राप्ति असंभव बतलाकर सवस्त्रमुक्ति का निषेध किया है।

१.२. श्रावक का लिंग अपवादलिंग

शिवार्य के सवस्त्र-मुक्ति-निषेधक होने का एक बलवान् प्रमाण यह है कि जहाँ यापनीयमत में मुनियों के लिए अचेल और सचेल, इन दो लिंगों का विधान किया गया है, वहाँ शिवार्य ने मुनियों के लिए मात्र अचेललिंग का नियम बतलाया है और मुनियों के अचेललिंग को उत्सर्गलिंग तथा श्रावकों के सचेललिंग को अपवादलिंग संज्ञा दी है। इस तरह उन्होंने श्वेताम्बरों की इस मान्यता को निरस्त किया है कि मुनियों के भी स्थविरकल्प के रूप में अपवादलिंग होता है। शिवार्य ने श्रावक के ही लिंग को अपवादलिंग नाम दिया है, यह उनके द्वारा प्रतिपादित उत्सर्ग और अपवाद की निम्नलिखित परिभाषाओं से सिद्ध होता है—

१.२.१. **सपरिग्रह एवं मुनिनिन्दा-कारणभूत लिंग अपवादलिंग**—भगवती-आराधना में **उत्सर्ग** और **अपवाद** शब्द सामान्यनियम एवं विशेषनियम के वाचक नहीं

१०."किं च महाव्रतोपदेशप्रवृत्तानि च सूत्राणि ज्ञापकानि सर्वसङ्गत्यागः आचेलक्कमित्यत्र निर्दिष्ट इत्यस्य।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. १११८ / पृ. ५७४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हैं, अपितु **सकलपरिग्रहाभाव** और **सकलपरिग्रहसद्भाव** के वाचक हैं। अतः **उत्सर्गलिंग का अर्थ है परिग्रहरहित-लिंग अर्थात् मुनिलिंग** और **अपवादलिंग का अर्थ है परिग्रह-सहितलिंग अर्थात् श्रावकलिंग**। इन अर्थों को भगवती-आराधना के टीकाकार अपराजित सूरि ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है—

"**उत्कर्षेण सर्जनं त्यागः सकलपरिग्रहस्य उत्सर्गः। उत्सर्गे सकलग्रन्थपरित्यागे भवं लिङ्गमौत्सर्गिकम् ----। यतीनामपवादकारणत्वात् परिग्रहोऽपवादः, अपवादो यस्य विद्यते इत्यपवादिकं परिग्रहसहितं लिङ्गमस्येत्यपवादिकलिङ्गं भवति।**" (वि.टी./भ.आ./गा. 'उस्सग्गियलिंग' ७६)।

अनुवाद—"उत्कृष्टरूप से सर्जन अर्थात् सकल परिग्रह का त्याग उत्सर्ग कहलाता है। उत्सर्ग से अर्थात् सकलपरिग्रह के त्याग से होनेवाले लिंग को औत्सर्गिक-लिंग कहते हैं। ---मुनियों के अपवाद (निन्दा) का कारण होने से परिग्रह की अपवाद संज्ञा है। अपवाद जिसके पास हो वह अपवादिक है अर्थात् परिग्रहसहित-लिंगवाला अपवादिकलिंगी होता है।"

इन वचनों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवती-आराधना में सकलपरिग्रह-रहित-लिंग को उत्सर्गलिंग एवं परिग्रहसहित-लिंग को अपवादलिंग कहा गया है। यहाँ एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है। टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि कि **मुनियों को निन्दा का पात्र बनाने के कारण परिग्रह अपवाद कहलाता है**। अतः परिग्रहसहितलिंग धारण करनेवाले को अपवादिक-लिंगी कहा गया है। ये शब्द इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि भगवती-आराधना में उल्लिखित **अपवादलिंग** श्रावकलिंग का वाचक है, मुनिलिंग का नहीं।

श्वेताम्बर एवं यापनीय मतों में स्थविरकल्पी साधुओं के वस्त्रपात्रादि को परिग्रह नहीं माना गया है, अपितु संयमोपकरण माना गया है।[११] अतः अपराजित सूरि द्वारा सपरिग्रहलिंग को अपवादलिंग कहे जाने से सिद्ध है कि भगवती-आराधना में श्रावक-लिंग को ही अपवादलिंग कहा गया है।

१.२.२. **गृहिभाव का सूचक लिंग अपवादलिंग**—भगवती-आराधना की निम्नलिखित गाथा में उत्सर्गलिंग के स्वरूप का वर्णन किया गया है—

अच्चेलक्कं लोचो वोसट्ठसरीरदा य पडिलिहणं।
एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विहो होदि उस्सग्गे॥ ७९॥ भ.आ.।

---

११. यत्संयमोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम्।
धर्मस्य हि तत्साधनमतोऽन्यदधिकरणमाहाऽर्हन्॥ १२॥ स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।
अधिकरणम् = परिग्रहः।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"अचेलता, केशलोच, शरीर से ममत्वाभाव और प्रतिलेखन (पिच्छी रखना), ये चार उत्सर्गलिंग के लक्षण हैं।"

इसके बाद इस लिंग के ग्रहण से होनेवाले लाभों का वर्णन करते हुए भगवती-आराधनाकार कहते हैं—

जत्तासाधुचिह्नकरणं खु जगपच्चयादठिदिकरणं।
गिहिभावविवेगो वि य लिंगग्गहणे गुणा होंति॥ ८१॥ भ.आ.।

अनुवाद—"उत्सर्गलिंग के ग्रहण से ये चार लाभ होते हैं—१. आहारदान की पात्रता सूचित होती है,[१२] २. लोगों में मोक्षमार्ग के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है,[१३] ३. स्वभाव में स्थित होने की प्रेरणा मिलती है[१४] और ४. मुनि के गृहस्थ से भिन्न होने का ज्ञापन होता है।"[१५]

यहाँ शिवार्य ने कहा है कि अचेलत्वरूप उत्सर्गलिंग धारण करने से मुनि गृहस्थ से भिन्न दिखता है। उन्होंने यह नहीं कहा कि अपवादलिंग ग्रहण करने से भी गृहस्थ से भिन्न दिखता है। इससे सिद्ध है कि वे अपवादलिंग को गृहस्थ का ही लिंग मानते हैं। इस प्रकार शिवार्य ने यह प्रतिपादित किया है कि गृहिभाव (गृहस्थत्व) का सूचक लिंग अपवादलिंग है।

१.२.३. **मुक्ति के लिए त्याज्य लिंग अपवादलिंग**—नीचे उद्धृत गाथा में शिवार्य ने मुक्ति के लिए त्यागे जाने योग्य लिंग को अपवादलिंग नाम दिया है। अपवादलिंग साक्षात् मुक्ति का हेतु नहीं है। उसे त्यागने पर ही मुक्ति संभव है। इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए टीकाकार अपराजित सूरि ने निम्नलिखित उत्थानिका के साथ उक्त गाथा का वर्णन किया है—

---

१२. "यात्रा शरीरस्थितिहेतुभूता भुजिक्रिया। तस्याः साधनं यल्लिङ्गजातं चिह्नजातं तस्य करणम्। न हि गृहस्थवेषेण स्थितो गुणीति सर्वजनताधिगम्यो भवति। अज्ञातगुणविशेषाश्च दानं न प्रयच्छन्ति। ततो न स्याच्छरीरस्थितिः।---गुणवत्तायाः सूचनं लिङ्गं भवति।" वि.टी./भ.आ./गा.८१/पृ.११६।

१३. "ननु श्रद्धा प्राणिधर्मः। अचेलतादिकं शरीरधर्मो लिङ्गम्। तत्किमुच्यते लिङ्गं जगत्प्रत्यय इति? सकलसङ्गपरिहारो मार्गो मुक्तेः इत्यत्र भव्यानां श्रद्धां जनयति लिङ्गमिति जगत्प्रत्यय इत्यभिहितम्। न चेत् सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तिलिङ्गं किमिति नियोगतोऽनुष्ठीयते इति?" वि.टी./भ.आ./गा.८१/पृ. ११६-११७।

१४. "आत्मनः स्वस्य अस्थिरस्य स्थिरतापादनम्। क्व मुक्तिवर्त्मनि व्रजने। किं मम परित्यक्त-वसनस्य रागेण रोषेण मानेन मायया लोभेन वा। वसनाग्रेसराः सर्वा लोकेऽलङ्क्रियाः तच्च निरस्तम्। को मम रागस्य अवसर इति?---।" वि. टी./भ. आ./गा. ८१/पृ.११७।

१५. "गृहित्वात् पृथग्भावो दर्शितो भवति।" वि. टी./भ. आ./गा. ८१/पृ.११७।

''अपवादलिङ्गमुपगतः किमु न शुद्ध्यत्येवेत्याशङ्कायां तस्यापि शुद्धिरनेन क्रमेण भवतीत्याचष्टे—

अववादियलिंगकदो विसयासत्तिं अगूहमाणो य।
णिंदण-गरहणजुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो॥ ८६॥ भ.आ.।

अनुवाद—''क्या अपवादलिंगधारी शुद्ध (कर्ममल से मुक्त) होता ही नहीं है? इस शंका का समाधान करने के लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि उसकी शुद्धि भी इस क्रम से होती है—अपवादलिंग में स्थित मनुष्य भी यदि निज शक्ति को न छिपाकर अपनी निन्दा-गर्हा करते हुए परिग्रह का त्याग कर देता है, तो वह शुद्ध हो सकता है।''

अपराजित सूरि इस गाथा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

''अपवादलिङ्गस्थोऽपि --- कर्ममलापायेन शुद्ध्यति। कीदृक् सन्? यः स्वां शक्तिम् अगूहमानः सन् परिग्रहं परित्यजन् योगत्रयेण। सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिकः परिग्रहः परीषहभीरुणा गृहीत इति अन्तःसन्तापो निन्दा। गर्हा परेषाम् एवं कथनम्। ताभ्यां युक्तो निन्दागर्हाक्रियापरिणत इति यावत्। एवमचेलता व्यावर्णितगुणा मूलतया गृहीता।'' (पृ. १२२)।

अनुवाद—''अपवादलिंग में स्थित पुरुष भी कर्ममल को दूर करके शुद्ध होता है। किस रीति से? अपनी शक्ति को न छिपाते हुए मन-वचन-काय से परिग्रह का त्याग करने पर। सकल परिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है, किन्तु मुझ पापी ने परीषहों से डरकर वस्त्रपात्रादि परिग्रह ग्रहण किया, इस प्रकार मन में सन्ताप करना निन्दा है। दूसरों से ऐसा कहना गर्हा है। इन दोनों से युक्त होने पर अर्थात् अपनी निन्दा-गर्हा करते हुए परिग्रह का त्याग करने पर शुद्ध होता है।''

इस गाथा और इसकी टीका से स्पष्ट है कि शिवार्य ने मोक्ष के लिए त्यागे जाने योग्य वस्त्रपात्रादि-परिग्रहयुक्त लिंग को ही अपवादलिंग नाम दिया है। यदि स्थविरकल्पी साधु के सचेललिंग को अपवादलिंग कहा जाता, तो उसकी शुद्धि के लिए वस्त्रपात्रादि-परिग्रह का त्याग आवश्यक न बतलाया जाता, वस्त्रपात्र धारण किये हुए ही उसकी शुद्धि (मुक्ति) स्वीकार कर ली जाती।

१.२.४. **श्राविका का लिंग अपवादलिंग**—भगवती-आराधना में श्रावक के लिंग को ही अपवादलिंग कहा गया है, इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि इसी ग्रन्थ की निम्नलिखित गाथा में आर्यिका के एकवस्त्रात्मक लिंग को उत्सर्गलिंग और श्राविका के लिंग को अपवादलिंग कहा गया है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं व इदरं वा।
तं तत्थ होदि हु लिंगं परित्तमुवधिं करेंतीए॥ ८०॥ भ.आ.।

अनुवाद—"स्त्रियों के भी जो औत्सर्गिक और आपवादिक लिंग आगम में कहे गये हैं, वे ही भक्तप्रत्याख्यान के समय में भी उनके लिंग होते हैं। आर्यिकाओं का एक-साड़ीमात्र-अल्पपरिग्रहात्मकलिंग औत्सर्गिक लिंग है और श्राविकाओं का बहुपरिग्रहात्मक लिंग अपवादलिंग है।"

इस कथन का समर्थन टीकाकार अपराजित सूरि के निम्नलिखित वचनों से होता है—

"**स्त्रियोऽपि यल्लिङ्गं दृष्टमागमेऽभिहितम् औत्सर्गिकं तपस्विनीनाम् इतरं वा श्राविकाणां तदेव भक्तप्रत्याख्याने भवति। लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्। इतरासां पुंसामिव योज्यम्। यदि महर्द्धिका, लज्जावती, मिथ्यादृष्टिस्वजना च तस्याः प्राक्तनं लिङ्गं, विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकलपरिग्रहत्यागरूपम्। उत्सर्गलिङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह—तदुत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति 'परित्तं' अल्पं उपधिं परिग्रहं कुर्वत्याः।**" (वि.टी./भ.आ./गा.८०)।

अनुवाद—"स्त्रियों के भी जो लिंग आगम में बतलाये गये हैं अर्थात् तपस्विनियों (आर्यिकाओं) का औत्सर्गिक और श्राविकाओं का आपवादिक, वे ही भक्तप्रत्याख्यान में भी होते हैं। तपस्विनियों का लिंग तो पहले धारण किया हुआ (प्राक्तन) अर्थात् औत्सर्गिक (एकवस्त्रात्मक) ही होता है, श्राविकाओं का लिंग पुरुषों के समान समझना चाहिए। अर्थात् श्राविका यदि महासम्पत्तिशाली है या लज्जाशील है अथवा उसके परिवारजन विधर्मी हैं, तो सार्वजनिकस्थान में उसे पूर्वधृत लिंग अर्थात् अपवादलिंग ही दिया जाना चाहिए, किन्तु एकान्त स्थान में सकलपरिग्रहत्यागरूप (एकवस्त्रात्मक) उत्सर्गलिंग दिया जा सकता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि स्त्रियों के लिए सकलपरिग्रह-त्यागरूप उत्सर्गलिंग कैसे संभव है? उत्तर यह है कि परिग्रह को अल्प करने से अर्थात् एकवस्त्रात्मक अल्पपरिग्रह से उत्सर्गलिंग संभव है।"

कुछ विद्वानों की धारणा है कि भगवती-आराधना में भक्तप्रत्याख्यान (सल्लेखना में संस्तारूढ़ होने) के समय आर्यिकाओं और श्रावकाओं के लिए मुनि के समान नाग्न्यलिंग ग्रहण करने का विधान किया गया है। किन्तु यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। इसका निराकरण अन्तिम (तृतीय) प्रकरण में किया जायेगा।

शिवार्य द्वारा प्रतिपादित अपवादलिंग की इन परिभाषाओं से सिद्ध है कि उन्होंने श्रावक-श्राविकाओं के सचेललिंग को ही **अपवादलिंग** शब्द से अभिहित किया है तथा मुनियों के अचेललिंग एवं आर्यिकाओं के एक-वस्त्रात्मक लिंग को **उत्सर्गलिंग**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

संज्ञा प्रदान की है। शिवार्य ने आचेलक्य को मुनि का अनिवार्य धर्म बतलाया है और वस्त्रादि-समस्त-परिग्रह-त्याग के बिना संयतगुणस्थान की प्राप्ति का निषेध किया है तथा भगवती-आराधना में कहीं भी मुनि के स्थविरकल्पिक भेद का उल्लेख नहीं किया। ये इस बात के प्रमाण हैं कि उनके सिद्धान्त में स्थविरकल्प के लिए कोई स्थान नहीं है, अतः भगवती-आराधना में उल्लिखित अपवादलिंग का स्थविरकल्पी साधु से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका सम्बन्ध श्रावक से ही है।

१.३. भक्तप्रत्याख्यानकाल में ग्राह्य लिंग का निर्देश

ये उत्सर्ग और अपवाद लिंग विरत (मुनि एवं आर्यिका) और अविरत (श्रावक एवं श्राविका) के नित्यलिंग हैं। किन्तु भक्तप्रत्याख्यान (सल्लेखना-मरण) के समय में परिस्थिति अनुकूल होने पर श्रावक-श्राविका को अपना नित्यलिंग छोड़कर मुनि एवं आर्यिका का लिंग ग्राह्य होता है। इसका प्ररूपण शिवार्य ने भगवती-आराधना में किया है। पहले वे निम्नलिखित गाथा में यह बतलाते हैं कि जब उपसर्ग, दुर्भिक्ष, असाध्यरोग, अतिवृद्धावस्था आदि के कारण धर्म का पालन असंभव हो जाय, तब पाप से बचने और धर्म की रक्षा के लिए विरत और अविरत दोनों भक्तप्रत्याख्यान के योग्य होते हैं—

अण्णम्मि चावि एदारिसंमि आगाढकारणे जादे।
अरिहो भत्तपरिण्णाए होदि विरदो अविरदो वा॥ ७३॥ भ.आ.।

अनुवाद—"(पूर्व गाथाओं में वर्णित दुःसाध्य व्याधि, उपसर्ग, अतिवृद्धावस्था आदि के अतिरिक्त) इसी प्रकार के अन्य अपरिहार्य कारण के उपस्थित होने पर विरत (मुनि और आर्यिका) और अविरत (श्रावक एवं श्राविका) भक्तप्रत्याख्यान के योग्य होते हैं।"

इसके बाद उत्तर गाथाओं में शिवार्य यह निर्देश करते हैं कि भक्तप्रत्याख्यान के योग्य विरत और अविरत को भक्तप्रत्याख्यान के समय किस स्थिति में और कैसे स्थान में कौन सा लिंग ग्रहण करना चाहिये, जैसा कि टीकाकार अपराजित सूरि के द्वारा गाथा के आरम्भ में दी गयी उत्थानिका से ज्ञात होता है—

"भक्तप्रत्याख्यानार्हस्य तत्प्रत्याख्यानपरिकरभूतलिंङ्गनिरूपणं उत्तरगाथाभिः क्रियते—

उस्सग्गियलिंगकदस्स लिंगमुस्सग्गियं तयं चेव।
अववादियलिंगस्स वि पसत्थमुवसग्गियं लिंगं॥ ७६॥ भ.आ.।

अनुवाद—"भक्तप्रत्याख्यान के योग्य विरत और अविरत के भक्तप्रत्याख्यान के साधनभूत लिंग का निरूपण उत्तरगाथाओं से किया जा रहा है—

"भक्तप्रत्याख्यान के समय उत्सर्गलिंगधारी के लिए तो उत्सर्गलिंग का ही विधान है, अपवादलिंगधारी के लिए भी उत्सर्गलिंग ही प्रशस्त होता है।"[१६]

जस्स वि अव्वभिचारी दोसो तिट्ठाणिगो विहारम्मि।
सो वि हु संथारगदो गेण्हेज्जोस्सुग्गियं लिंगं॥ ७७॥ भ.आ.।

अनुवाद—"जिसके लिंग और दोनों अण्डकोष, इन तीन स्थानों में ऐसा दोष है, जिसे औषध आदि से भी दूर नहीं किया जा सकता, उसे भी वसतिका में (सार्वजनिक स्थान में नहीं) संस्तारारूढ़ होने पर औत्सर्गिकलिंग अवश्य ग्रहण करना चाहिए।"

आवसधे वा अप्पाउग्गे जो वा महड्ढिओ हिरिमं।
मिच्छजणे सजणे वा तस्स होज्ज अववादियं लिंगं॥ ७८॥ भ.आ.।

अनुवाद—"किन्तु जो अपवादलिंगधारी महासम्पत्तिशाली हो अथवा लज्जालु हो या जिसके स्वजन (परिवार के लोग) मिथ्यादृष्टि (विधर्मी) हों, उसे सार्वजनिक स्थान में (भक्तप्रत्याख्यान के समय) अपवादलिंग ही ग्रहण करना चाहिये, भले ही उसका लिंग और दोनों अण्डकोश प्रशस्त हों।"[१७]

आर्यिका और श्राविका के लिए निर्धारित किये गये भक्त-प्रत्याख्यानकालीन लिंगों का निर्देश पूर्व में किया जा चुका है। (देखिये, शीर्षक १.२.४)।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिवार्य ने पूर्वोद्धृत ७३वीं गाथा में विरत और अविरत को ही भक्त प्रत्याख्यान के योग्य बतलाया है और तत्पश्चात् उत्तरवर्ती गाथाओं में जो भक्तप्रत्याख्यान के योग्य हैं, उन्हीं के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में ग्रहण करने योग्य उत्सर्ग या अपवादलिंग का निर्देश किया है, इससे एकदम स्पष्ट है कि उत्सर्ग लिंग का सम्बन्ध विरतों (मुनि-आर्यिका) से तथा अपवादलिंग का सम्बन्ध अविरतों (श्रावक-श्राविका) से है।

---

१६. टीकाकार अपराजित सूरि ने 'प्रशस्त' शब्द से प्रशस्त पुरुषचिह्न अर्थ ग्रहण किया है। यथा—
"**जइ पसत्थलिंगं** यदि प्रशस्तं शोभनं लिङ्गं मेहनं भवति। चर्मरहितत्वम्, अतिदीर्घत्वं, स्थूलत्वम् असकृदुत्थानशीलतेत्येवमादिदोषरहितं यदि भवेत्। पुंस्त्वलिङ्गता इह गृहीतेति बीजयोरपि लिङ्गशब्देन ग्रहणम्। अतिलम्बमानतादिदोषरहितता प्रशस्तातापि तयोर्गृहीता।" (विजयोदया-टीका/भ.आ./गा.७६)। अर्थात् यदि पुरुषचिह्न प्रशस्त हो, चर्मरहितत्व आदि दोषों से रहित हो, तो अपवादलिंगधारी को भक्तप्रत्याख्यान के समय (सार्वजनिक स्थान में भी) उत्सर्गलिंग धारण करना चाहिए।

१७. "अपवादलिङ्गस्थानां प्रशस्तलिङ्गानां सर्वेषामेव किमौत्सर्गिक-लिङ्गतेत्यस्यामारेकायामाह—'आवसधे वा अप्पाउग्गे' ---।" विजयोदयाटीका/पातनिका/भगवती-आराधना/गा.७८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१.४. प्रेमी जी की महाभ्रान्ति

पं० नाथूराम जी प्रेमी ने लिखा है कि भगवती-आराधना की "गाथा ७९-८३ में मुनि के उत्सर्ग और अपवादमार्ग का विधान है, जिसके अनुसार मुनि वस्त्रधारण कर सकता है।" इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने विजयोदया टीका के निम्नलिखित वाक्य उद्धृत किये हैं—"**वसनसहित-लिङ्गधारिणो हि वस्त्रखण्डादिकं शोधनीयं महत्। इतरस्य पिच्छादिमात्रम्।**" (भ.आ./ गा.'गंथच्चाओ'८२)।[१८]

प्रेमी जी आगे लिखते हैं—"गाथा ७९-८०-८१ में शिवार्य ने भक्तप्रत्याख्यान के प्रसंग में कहा है कि उत्सर्गलिंगवाले (वस्त्रहीन) को तो, जो कि भक्तप्रत्याख्यान करना चाहता है, उत्सर्गलिंग ही चाहिए, परन्तु जो अपवादलिंगी (सवस्त्र) है, उसे भी उत्सर्गलिंग ही प्रशस्त कहा है, अर्थात् उसे भी नग्न हो जाना चाहिए और जिसके लिंगसम्बन्धी तीन दोष दुर्निवार हों, उसे वसति में संस्तारारूढ़ होने पर उत्सर्गलिंग धारण करना चाहिए।"[१८]

यह निष्कर्ष प्रेमी जी की महाभ्रान्ति का फल है। यह भ्रान्ति इसलिए हुई है कि उन्होंने निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया—

१. उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि शिवार्य ने अपवादलिंग की जो परिभाषा की है, वह श्वेताम्बर-यापनीय-मान्य परिभाषा से भिन्न है। उन्होंने सपरिग्रह और मुक्ति के लिए त्याज्य तथा मुनि के लिए निन्दा के कारणभूत लिंग को अपवादलिंग कहा है, जो स्पष्टतः श्रावक का लिंग है।

२. उनकी दृष्टि इस तथ्य पर भी नहीं गयी कि शिवार्य ने आचेलक्य को मुनि का स्थितिकल्प अर्थात् अनिवार्य आचार बतलाया है और वस्त्रादि-सकलपरिग्रह त्याग किये बिना संयतगुणस्थान की प्राप्ति असंभव बतलायी है, इसलिए उनके सिद्धान्त में श्वेताम्बर-यापनीय-मान्य स्थविरकल्प के लिए स्थान हो ही नहीं सकता।

३. उन्होंने इस बात पर भी गौर नहीं किया कि श्वेताम्बर और यापनीय ग्रन्थों में जिनकल्प और स्थविरकल्प का विधान है, किन्तु भगवती-आराधना में सवस्त्र स्थविर-कल्प को कहीं भी मुनिधर्म या मोक्षमार्ग नहीं माना गया है। इसलिए उसे अपवादलिंग कहे जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

४. प्रेमी जी ने इस तथ्य को भी दृष्टि से ओझल किया है कि शिवार्य ने अपवादलिंगधारी को महासम्पत्तिवान् एवं परिवारवाला कहा है। ये धर्म न तो जिन-कल्पिक मुनि में हो सकते हैं, न स्थविरकल्पिक मुनि में, क्योंकि दोनों अनगार होते

१८.जैन साहित्य और इतिहास/द्वि.सं./ पृ.७१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हैं। यदि कहा जाय कि स्थविरकल्पी को भूतार्थग्राही-नय से महासम्पत्तिवान् एवं परिवारयुक्त कहा गया हैं, तो यह युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि भगवती-आराधना में सवस्त्र-स्थविरकल्प स्वीकार ही नहीं किया गया है, तब स्थविरकल्पी को भूतार्थग्राही नय से सम्पत्तिवान्, परिवारयुक्त आदि कहे जाने की बात वैसी ही है, जैसे बन्ध्यापुत्र को सुन्दर या असुन्दर कहा जाय। अतः इन विशेषणों से श्रावक का ही अपवादलिंगधारी कहा जाना युक्तिमत् सिद्ध होता है।

५. प्रेमी जी ने इस तथ्य पर भी दृष्टि नहीं डाली कि शिवार्य के टीकाकार अपराजित सूरि ने श्राविका को स्पष्ट शब्दों में अपवादलिंगस्थ कहा है, अतः इस न्याय से श्रावक का ही अपवादलिंगधारी कहा जाना घटित होता है।

६. उन्होंने इस बात का भी विचार नहीं किया कि शिवार्य ने विरत और अविरत दोनों को भक्तप्रत्याख्यान के योग्य बतलाया है और भक्त प्रत्याख्यानकालीन लिंगों का निर्देश भक्तप्रत्याख्यान-योग्य व्यक्तियों के लिए ही किया है, इसलिए अपवादलिंग का सम्बन्ध अविरत (श्रावक-श्राविका) से ही है।

प्रेमी जी यदि इन तथ्यों पर ध्यान देते, तो उन्हें उक्त महाभ्रान्ति नहीं होती। वे यह भली-भाँति देख पाते कि शिवार्य ने श्रावक-श्राविका के ही लिंग को अपवादलिंग कहा है। फलस्वरूप उनसे एक महत्त्वपूर्ण दिगम्बरग्रन्थ को यापनीयग्रन्थ घोषित करने की एतिहासिक भूल न होती।

पं० नाथूराम जी प्रेमी के उपर्युक्त निष्कर्ष को गलत सिद्ध करनेवाले और भी अनेक तथ्य भगवती-आराधना और उसकी विजयोदया टीका में उपलब्ध होते हैं। उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

१.५. टीका में श्वेताम्बरमान्य सचेललिंग के दोषों का निरूपण

प्रेमी जी ने अपने पूर्वोद्धृत वक्तव्य में भगवती-आराधना के टीकाकार अपराजित सूरि के निम्नलिखित वचन उद्धृत किये हैं—"**वसनसहितलिङ्गधारिणो हि वस्त्रखण्डादिकं शोधनीयं महत्। इतरस्य पिच्छादिमात्रम्**" (गा.८२/पृ.११८) और कहा है कि इन वचनों से सिद्ध होता है कि भगवती-आराधना में मुनि के लिए सचेल अपवादमार्ग का विधान है। प्रेमी जी की यह मान्यता उनकी पूर्वकथित महाभ्रान्ति का ही अंग है। अपराजित सूरि ने उक्त वचन भगवती-आराधना की निम्नलिखित गाथा की टीका में व्यक्त किये हैं—

गंथच्चाओ लाघवमप्पडिलिहणं च गदभयत्तं च।
संसज्जणपरिहारो परिकम्मविवज्जणा चेव॥ ८२॥

अनुवाद—"परिग्रह का त्याग, लाघव, अप्रतिलेखन, निर्भयता, सम्मूर्च्छन जीवों की रक्षा तथा परिकर्म का त्याग, ये गुण भी मुनियों के लिए निर्धारित उत्सर्गलिंग में होते हैं।"

अपराजित सूरि ने दिगम्बर मुनियों द्वारा गृहीत अचेललिंग के इन गुणों का विवेचन श्वेताम्बर मुनियों द्वारा स्वीकृत सचेललिंग के दोषों को दर्शाते हुए किया है। यथा—

"गंथच्चागो—परिग्रहत्यागः। लाघवं-हृदयसमारोपितशैल इव भवति परिग्रहवान्। कथमिदमन्येभ्यश्चौरादिभ्यः पालयामीति दुर्धरचित्तखेदविगमाल्लघुता भवति।

अप्पडिलिहणं—वसनसहितलिङ्गधारिणो हि वस्त्रखण्डादिकं शोधनीयं महत्। इतरस्य पिच्छादिमात्रम्।

परिकम्मविवज्जणा चेव—याचनसीवनशोषणप्रक्षालनादिरनेको हि व्यापारः स्वाध्याय-ध्यानविघ्नकारी, अचेलस्य तन्न तथेति परिकर्मविवर्जनम्।

गदभयत्तं—भयरहितता। भयव्याकुलितचित्तस्य न हि रत्नत्रयघटनायामुद्योगो भवति। **सवसनो यतिर्वस्त्रेषु यूकालिक्षादिसम्मूर्च्छनज-जीवपरिहारं न विधातुमर्हः**। अचेलस्तु तं परिहरतीत्याह—'संसज्जणं परिहारो' इति।

परिसह अधिवासणा चेव[१९]—शीतोष्णदंशमशकादिपरीषहजयो युज्यते नग्नस्य। **वसनाच्छा-दनवतो न शीतादिबाधा येन तत्सहनपरीषहजयः स्यात्। पूर्वोपात्तकर्मनिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहा इति वचनान्निर्जरार्थिभिः परिषोढव्याः परीषहाः।**" (वि.टी./भ. आ./गा.८२/पृ. ११७-११८)।

अनुवाद

"परिग्रह का छूटना उत्सर्गलिंग के ग्रहण का पहला गुण है। दूसरा गुण है लाघव, क्योंकि परिग्रही को ऐसा लगता है, जैसे उसकी छाती पर पहाड़ रखा हो। 'चोर आदि से इस परिग्रह की रक्षा कैसे करूँ,' चित्त से यह बोझ हट जाने पर बहुत हलकापन महसूस होता है।

"जो मुनि वस्त्रसहित लिंगधारण करते हैं, उन्हें वस्त्रादि अनेक वस्तुओं का शोधन करना पड़ता है, किन्तु वस्त्ररहित साधु के लिए केवल पिच्छी-कमण्डलु का ही शोधन आवश्यक होता है। अतः अप्रतिलेखन भी अचेलत्व का एक गुण है।

---

१९. इस गुण का उल्लेख अगली गाथा में है, जो इस प्रकार है—
विस्सासकरं रूवं अणादरो विसयदेहसुक्खेसु।
सव्वत्थ अप्पवसदा परिसह-अधिवासणा चेव॥ ८३॥ भगवती-आराधना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"वस्त्रधारी साधु को वस्त्र माँगना, सीना, धोना, सुखाना आदि अनेक कार्य करने पड़ते हैं, जिनसे स्वाध्याय और ध्यान में विघ्न होता है, किन्तु वस्त्ररहित साधु इन सबसे मुक्त रहता है। अतः परिकर्म से मुक्त रहना अचेललिंग का एक अन्य गुण है।

"अचेल साधु निर्भय भी रहता है। जिसका चित्त भय से व्याकुल रहता है, वह रत्नत्रय की साधना का उद्यम नहीं कर पाता। सचेल साधु वस्त्रों में उत्पन्न होनेवाले जूँ, लीख आदि सम्मूर्च्छन जीवों की हिंसा से नहीं बच सकता, जब कि अचेल साधु बच जाता है। अतः संसञ्जण-परिहार भी उसका एक गुण है।

"तथा नग्न साधु शीत, उष्ण, दंशमशक आदि परीषहों को जीतता है, किन्तु जिसका शरीर वस्त्राच्छादित है, उसे शीतादि की बाधा नहीं होती, अतः उसके लिए परीषहजय संभव नहीं है। "**मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः**" तत्त्वार्थसूत्र (९/८) के इस वचनानुसार कर्मनिर्जरा के अभिलाषियों को परीषह सहना आवश्यक है।"

इस टीका से स्पष्ट है कि अपराजित सूरि ने श्वेताम्बरसाधु द्वारा गृहीत सचेललिंग से तुलना करते हुए दिगम्बरसाधु द्वारा स्वीकृत अचेललिंग के गुणों का प्ररूपण किया है। सचेललिंग में दोष ही दोष बतलाये हैं और अचेललिंग में गुण ही गुण। सचेललिंग को स्वाध्याय और ध्यान में विघ्नकारक, सम्मूर्च्छन जीवों की हिंसा का हेतु तथा कर्मनिर्जरा में बाधक बतलाया है, और यह स्पष्ट किया है कि वह मोक्ष का मार्ग नहीं है, मोक्ष का मार्ग केवल अचेललिंग है।

इस प्रकार जहाँ भगवती-आराधना और उसकी टीका में सचेललिंग के मोक्षमार्ग होने का निषेध किया गया है, वहाँ पं० नाथूराम जी प्रेमी ने उक्त ग्रन्थ में उसका मोक्ष के अपवादमार्ग के रूप में प्रतिपादित होना मान लिया है। इतना उलटा, इतना विपरीत आकलन! महान् आश्चर्य है। इससे भी महान् आश्चर्य की बात है उनके अनुगामियों द्वारा आँख बन्द कर उनका अनुसरण किया जाना।

एक और अचरज की बात है। अपराजित सूरि ने उपर्युक्त व्याख्यान में मुनि के सचेललिंग को कहीं भी अपवादमार्ग नहीं कहा है, किन्तु प्रेमी जी ने उसे अपने मन से अपवादमार्ग नाम दे दिया है। इस प्रकार उन्होंने एक महान् भ्रान्ति के वशीभूत होकर भगवती-आराधना में मुनि के लिए आपवादिक सचेललिंग के विधान का जबरदस्ती आरोपण कर डाला और उसे यापनीयग्रन्थ घोषित कर दिया।

१.६. टीका में अचेललिंग से ही मोक्ष का प्रतिपादन

अपराजित सूरि ने भगवती-आराधना की टीका में सर्वत्र सचेललिंग के मोक्षमार्ग होने का निषेध किया है और एकमात्र अचेललिंग को ही मुक्ति का उपाय प्रतिपादित किया है। उनके निम्नलिखित वचन प्रमाण हैं—

१. "**मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्।**" (गा. 'जिणपडिरूवं' ८४)।

अनुवाद—"मुक्ति का इच्छुक मुनि वस्त्रग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह मुक्ति का उपाय नहीं है।"

२. "**सकलसङ्गपरिहारो मार्गो मुक्तेः। --- न चेत् सकलपरिग्रहत्यागो मुक्ति-लिङ्गं किमिति नियोगतोऽनुष्ठीयत इति?**" (गा.'जत्तासाधण'८१/पृ.११७)।

अनुवाद–"समस्त परिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है। यदि सकल परिग्रह का त्याग मुक्ति का लिंग न होता, तो उसे नियमपूर्वक (अनिवार्यतः) ग्रहण क्यों किया जाता?"

३. "**सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिकः परिग्रहः परीषह-भीरुणा गृहीत इत्यन्तःसन्तापो निन्दा।**" (गा.'अववादिय'८६/पृ.१२२)।

अनुवाद—"सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है, किन्तु मुझ पापी ने परीषहों के डर से वस्त्रपात्रादि-परिग्रह ग्रहण किया, ऐसा अन्तःसन्ताप निन्दा कहलाता है।"

४. "**चेलग्रहणं परिग्रहोपलक्षणं तेन सकलग्रन्थत्याग आचेलक्यशब्दस्यार्थः।**" (गा. 'देसामासिय'१११७/ पृ.५७३)।

अनुवाद—"वस्त्रग्रहण परिग्रह का उपलक्षण है, अतः समस्त परिग्रह का त्याग आचेलक्य शब्द का अर्थ है।"

५. "**नैव संयतो भवतीति वस्त्रमात्रत्यागेन शेषपरिग्रहसमन्वितः।**" (गा.'ण य होदि' १११८/पृ.५७४)।

अनुवाद—"वस्त्रमात्र छोड़ देने और शेष परिग्रह रखने से कोई संयत नहीं होता।"

६. "**यतीनामपवादकारणत्वात् परिग्रहोऽपवादः। अपवादो यस्य विद्यत इत्यप-वादिकं परिग्रहसहितं लिङ्गम्।**" (गा.'उस्सग्गिय' ७६ पृ./११३)।

अनुवाद—"मुनियों के लिए अपवाद (निन्दा) का कारण होने से परिग्रह अपवाद कहलाता है। परिग्रह जिस लिंग में होता है, वह परिग्रहसहितलिंग आपवादिकलिंग है।"

इन प्रमाणों को देखते हुए यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि भगवती-आराधना या उसकी टीका में कहीं भी मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग का विधान किया गया है।

१.७. श्वेताम्बरीय मान्यताओं के आगमानुकूल होने का खण्डन

अपराजित सूरि ने भगवती-आराधना की टीका में अनेक स्थानों पर श्वेताम्बरीय मान्यताओं के युक्ति और आगम के अनुकूल होने का खण्डन किया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि ऐसा करने के लिए उन्होंने कई जगह श्वेताम्बर-आगमों से उद्धरण दिये हैं और श्वेताम्बर साधुओं के 'वस्त्रपात्र' आदि उपकरणों का उल्लेख किया है तथा सग्रन्थ होते हुए भी उनके द्वारा अपने को निर्ग्रन्थ कहे जाने पर आक्षेप किया है। यथा—

१. '**आचेलक्कुद्देसिय**' इस गाथा (४२३) की टीका में उन्होंने जो अनेक युक्तियों से सचेललिंग के बहुविध दोषों का विस्तार से उद्घाटन किया है, वह श्वेताम्बर साधुओं के ही सचेललिंग के दोषों का उद्घाटन है, क्योंकि उन्होंने (अपराजितसूरि ने) श्वेताम्बरों की ओर से सचेललिंग के समर्थन हेतु आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि श्वेताम्बरमान्य आगमों के वचन उद्धृत किये हैं और उनका युक्तिपूर्वक निराकरण कर एकमात्र अचेललिंग को ही मुक्ति का मार्ग सिद्ध किया है।[२०]

२. श्वेताम्बर साधु वस्त्रधारण करते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहते हैं। इस पर तीक्ष्ण आक्षेप करते हुए अपराजित सूरि ने कहा है—

"**चेलपरिवेष्टिताङ्ग आत्मानं निर्ग्रन्थं यो वदेत्तस्य किमपरे पाषण्डिनो न निर्ग्रन्थाः?**" (गा. 'आचेलक्कुद्देसिय'४२३/पृ.३२३)।

अनुवाद—"वस्त्रधारण करते हुए भी जो स्वयं को निर्ग्रन्थ कहता है, उसके कथन से क्या अन्य सम्प्रदाय के साधु निर्ग्रन्थ सिद्ध नहीं होंगे? अर्थात् उसके मत से तो सभी सम्प्रदायों के साधु निर्ग्रन्थ सिद्ध होते हैं।"

३. श्वेताम्बरग्रन्थों में कहा गया है कि तीर्थंकर अनुपम धृति और प्रथमसंहनन आदि अतिशयों के धारी होते हैं, अतः वे जिनकल्प या अचेललिंग ग्रहण करते हैं, किन्तु शिष्य उनके समान नहीं होते, अतः उन्हें तीर्थंकरों के लिंग का अनुकरण नहीं करना चाहिए। तीर्थंकरों ने उनके लिए सचेललिंग (स्थविरकल्प) का उपदेश दिया है।[२१] अपराजित सूरि इससे सहमत नहीं है। अतः उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ इस श्वेताम्बरीय मत के ही खण्डन में लिखी हैं—

"**जिनानां प्रतिबिम्बं चेदमचेललिङ्गम्। ते हि मुमुक्षवो मुक्त्युपायज्ञा यद् गृहीतवन्तो लिङ्गं तदेव तदर्थिनां योग्यमित्यभिप्रायः। यो हि यदर्थी विवेकवान् नासौ तदनुपायमादत्ते**

२०. देखिए , चतुर्दश अध्याय 'अपराजित सूरि : दिगम्बराचार्य।'

२१. देखिए , तृतीय अध्याय का द्वितीय प्रकरण / शीर्षक ९।

यथा घटार्थी तुरिवेमादीन्। मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्। यच्चात्मनोऽभिप्रेतस्योपायस्तन्नियोगत उपादत्ते यथा चक्रादिकं तथा यतिरप्यचेलताम्। तदुपायता चाचेलताया जिनाचरणादेव ज्ञानदर्शनयोरिव।'' (गा.'जिणपडिरूवं'८४/पृ.१२०)।

अनुवाद—''यह अचेललिंग जिनदेवों का प्रतिबिम्ब है। जिनदेव मोक्ष के अभिलाषी थे और मुक्ति का उपाय जानते थे, अतः उन्होंने जिस लिंग को ग्रहण किया था, वही अन्य मोक्षार्थियों के ग्रहण करने योग्य है। क्योंकि जो जिस वस्तु को चाहता है और विवेकशील होता है, वह उन पदार्थों को ग्रहण नहीं करता, जो उस वस्तु के उपाय नहीं हैं। जैसे घटनिर्माण का इच्छुक मनुष्य तुरी-वेमादि (पटनिर्माण के साधनों) को ग्रहण नहीं करता, वैसे ही मुक्ति का अभिलाषी साधु वस्त्र ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वस्त्र मुक्ति का उपाय नहीं है। और जो अपनी अभीष्ट वस्तु का उपाय होता है, उसे मनुष्य नियम से ग्रहण करता है। जैसे घटनिर्माण का इच्छुक व्यक्ति चक्रादि को अवश्य ग्रहण करता है, वैसे ही मोक्षार्थी साधु भी अचेलता को अनिवार्यतः अंगीकार करता है। और अचेलता ज्ञानदर्शन की तरह मुक्ति का उपाय है, यह जिनेन्द्रदेव के ही आचरण से सिद्ध है।''

यहाँ अपराजित सूरि ने एक अखण्ड्य युक्ति के द्वारा अचेललिंग को ही मोक्षमार्ग सिद्ध किया है। प्रश्न यह है कि भले ही तीर्थंकर अनुपम धृति और प्रथम संहनन आदि अतिशयों से युक्त थे, किन्तु जब सचेललिंग से भी मोक्ष हो सकता है, तब उन्होंने अचेललिंग क्यों चुना, जब कि वह अत्यन्त कठिन है? जिनेन्द्र भगवान् के बारे में 'भगवान् की लीला' जैसा तर्क तो उपयुक्त नहीं हो सकता।

इस प्रश्न के समाधान हेतु अपराजित सूरि ने विवेकवान् मनुष्यों की कार्यपद्धति को युक्ति के रूप में ग्रहण किया है। युक्ति यह है कि जो विवेकशील होते हैं, वे अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए उसी सामग्री को अपनाते हैं, जिससे कार्यसिद्धि संभव है। जिससे कार्यसिद्धि संभव नहीं है, वे उस सामग्री का अवलम्बन नहीं करते। तीर्थंकर विवेकवान् थे और उन्होंने मुक्ति के लिए अचेललिंग अपनाया था, इससे सिद्ध है कि अचेललिंग ही मोक्ष का एकमात्र उपाय है, सचेललिंग नहीं। अतः मोक्षार्थियों को उसी लिंग का आश्रय लेना चाहिए। इस युक्ति के द्वारा अपराजित सूरि ने श्वेताम्बरों की इस मान्यता को भी अयुक्तिमत् सिद्ध कर दिया है कि समान्य मनुष्यों को तीर्थंकरों द्वारा गृहीत अचेललिंग ग्रहण नहीं करना चाहिए।

किन्तु श्वेताम्बराचार्यों का कहना है कि तीर्थंकर वस्त्रत्याग इसलिए नहीं करते कि नग्नता मोक्ष का उपाय है, अपितु इसलिए करते हैं कि उन्हें वस्त्रधारण की आवश्यकता नहीं होती। कारण यह है कि उनका शरीर शुभ प्रभामण्डल से आच्छादित हो जाता

है, जिससे उनकी नग्नता दिखाई नहीं देती। तथा जितपरीषह होने से उन्हें शीतादि की बाधाएँ नहीं होतीं।[२२] अपराजितसूरि इससे सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि मोक्ष का उपाय होने के कारण ही तीर्थंकर वस्त्रसहित समस्त परिग्रह का त्याग करते हैं। अतः अचेलत्व ही मोक्ष का उपाय है।

४. श्वेताम्बरमत में साधुओं का वस्त्रपात्र रखना परिग्रह नहीं माना गया है, क्योंकि वे उक्त मत में संयम के साधन माने गये हैं। अपराजित सूरि को यह मान्य नहीं है। वे उन्हें परिग्रह ही निरूपित करना चाहते हैं। अतः वे बाह्यपरिग्रह को 'क्षेत्र-वास्तु' आदि शब्दों से संकेतित न कर 'वस्त्रपात्रादि' शब्दों से संकेतित करते हैं—

"**सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो, मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिकः परिग्रहः परीषहभीरुणा गृहीत इत्यन्तःसन्तापो निन्दा।**" (गा.'अववादिय'८६ / पृ.१२२)।

स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि अन्य श्वेताम्बर-मान्यताओं का खण्डन करनेवाले अपराजित सूरि के वचन यथाप्रसंग आगे उद्धृत किये जायेंगे।

'**गंथच्चाओ लाघवं**' (८२) इस गाथा की टीका में भी अपराजित सूरि ने '**वसन-सहितलिङ्गधारिणो हि**' (पृ.११८) इत्यादि वचनों के द्वारा श्वेताम्बर-सचेललिङ्ग के ही दोष उद्घाटित किये हैं और उसे मुक्तिसाधन के अयोग्य ठहराया है। अतः पं० नाथूराम जी प्रेमी ने उक्त वचनों को, जो भगवती-आराधना में मुनि के लिए सचेल अपवादलिंग का प्रतिपादक मान लिया है, वह उनकी महाभ्रान्ति है। और उनके अनुयायियों ने जो उनका अनुकरण किया है, वह अन्धानुकरण है।

माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी भगवती-आराधना में मुनि के लिए सचेल-अपवादलिंग के विधान को अस्वीकार किया है। वे जैनसंस्कृति-संरक्षकसंघ, शोलापुर से प्रकाशित 'भगवती-आराधना' की प्रस्तावना में लिखते हैं—

"यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि यदि ग्रंथकार और टीकाकार को सवस्त्रमुक्ति अभीष्ट होती, तो वह भक्तप्रत्याख्यान के लिए औत्सर्गिकलिंग आवश्यक नहीं रखते और न टीकाकार उत्सर्ग का अर्थ सकलपरिग्रह का त्याग करते तथा परिग्रह को यतिजनों के अपवाद का कारण होने से अपवादरूप न कहते। और न स्त्रियों से ही अन्तिम समय एकान्त स्थान में परिग्रह का त्याग कराते।

"श्वेताम्बरपरम्परा में जो भक्तप्रत्याख्यान-विषयक मरणसमाधि आदि ग्रन्थ हैं, जिनके साथ इस ग्रन्थ की अनेक गाथाएँ भी मेल खाती हैं, उनमें भक्तप्रत्याख्यान के

---

२२. प्रवचनपरीक्षा / वृत्ति / १ / २ / ३१ / पृ.९२-९३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिए आवश्यक लिंग का कथन ही नहीं है। किन्तु भगवती-आराधना में उस पर बहुत अधिक जोर दिया गया है और इस विषय में ग्रन्थकार और टीकाकार में एकरूपता है। दोनों ही साधु-आचार के विषय में इतने कट्टर हैं कि दिगम्बर आचार्यों को भी मात करते हैं।'' [२३]

भक्तप्रत्याख्यान के समय जो अपवादलिंगी (गृहस्थ) के लिये भी उत्सर्गलिंग (वस्त्रत्याग) का विधान भगवती-आराधना में किया गया है, उससे भी सिद्ध होता है कि ग्रन्थकार एकमात्र उत्सर्गलिंग को ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं।

डॉ० एम० डी० वसन्तराज का भी कथन है कि ''मान्य नाथूराम जी प्रेमी ने मूलाराधना (भगवती-आराधना) के कर्त्ता शिवार्य को भी यापनीयपंथ का कहा है, परन्तु इस ग्रन्थ में केवलिभुक्ति, सचेलमुक्ति, स्त्रीपर्याय में मुक्ति बतानेवाला कोई अंश नहीं है।''[२४]

विवेचन का सार

उपर्युक्त विवेचन का सार यह है कि भगवती-आराधना में—१. मुनि के दस स्थितिकल्पों में आचेलक्य का ही विधान है, सचेलत्व का नहीं, २. वस्त्र पात्रादि समस्त परिग्रह के त्याग से ही जीव का संयत होना बतलाया गया है, ३. मुनि और श्रावक तथा आर्यिका और श्राविका को ही भक्तप्रत्याख्यान का अधिकारी कहा गया है और इनके ही भक्तप्रत्याख्यान-सम्बन्धी लिंगों का वर्णन उत्सर्गलिंग और अपवादलिंग नाम से किया गया है, ४. मुनि वस्त्रादि-परिग्रह के सम्पर्क से अपवाद (निन्दा) का पात्र बनता है, अतः परिग्रह से युक्त लिंग को अपवादलिंग संज्ञा दी गई है, ५. अपवादलिंग-धारियों के साथ जो महासम्पत्तिशाली आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं, वे श्रावकों के ही धर्म हैं, मुनियों के नहीं, ६. श्राविका के लिंग को भी अपवादलिंग कहा गया है और उसके साथ महासम्पत्तिशाली आदि विशेषण प्रयुक्त हुए है, ७. आचेलक्य को ही गृहस्थभाव से भिन्नता द्योतित करनेवाला धर्म कहा गया है, ८. अपवादलिंगी को वस्त्रत्याग करने पर ही मुक्ति का पात्र बताया गया है, ९. सचेललिंग से मोक्षप्राप्ति का निषेध किया गया है, १०. सम्पूर्ण ग्रन्थ में अचेललिंग को ही मोक्ष का साधक प्ररूपित किया गया है तथा ११. अपराजित सूरि ने अपनी टीका में श्वेताम्बरीय मान्यताओं को आगम, युक्ति एवं मोक्ष के प्रतिकूल बतलाया है।

---

२३. भगवती-आराधना (जैनसंस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर)/ प्रस्तावना / पृ.३०-३१।
२४. गुरुपरम्परा से प्राप्त दिगम्बर जैन आगम : एक इतिहास/ पृ.६५।

भगवती-आराधना में प्रतिपादित इन सिद्धान्तों से सिद्ध है कि उसमें श्रावकलिंग को ही अपवादलिंग कहा गया है, यापनीय मुनि के सचेललिंग को नहीं। अतः प्रेमी जी की यह मान्यता असत्य सिद्ध हो जाती है कि उसमें मुनि के लिए अचेल-उत्सर्गलिंग के साथ सचेल-अपवादलिंग का भी विधान है। इस मान्यता के असत्य सिद्ध हो जाने से यह भी सिद्ध हो जाता है कि भगवती-आराधना में सवस्त्रमुक्ति का निषेध किया गया है, अतः वह यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है।

२
स्त्रीमुक्तिनिषेध

स्त्रीमुक्ति की मान्यता यापनीयमत का दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। भगवती-आराधना में इसका भी निषेध किया गया है। इसके प्रमाण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

२.१. वस्त्रत्याग के बिना संयतगुणस्थान संभव नहीं

निम्नलिखित गाथा पूर्व में सवस्त्रमुक्ति-निषेध के प्रसंग में उद्धृत की गयी है। यह स्त्रीमुक्ति-निषेधक भी है, अतः प्रत्यक्षप्रमाण के लिए इसे पुनः उद्धृत किया जा रहा है—

ण य होदि संजदो वत्थमित्तचागेण सेससंगेहिं।
तम्हा आचेलक्कं चाओ सव्वेसि होइ संगाणं॥ ११११८॥ भ.आ.।

इसमें कहा गया है कि वस्त्रमात्र के त्याग से संयतगुणस्थान की प्राप्ति नहीं होती, अपितु समस्त परिग्रह के त्याग से होती है। छठे से लेकर ऊपर के सभी गुणस्थान संयतगुणस्थान कहलाते हैं, वे वस्त्रत्याग के बिना संभव नहीं हैं। स्त्री के लिए वस्त्रत्याग असंभव है, अतः संयतगुणस्थान भी असंभव हैं। भगवती-आराधना में यह स्त्रीमुक्तिनिषेध का पहला सुदृढ़ प्रमाण है।

इस गाथा की टीका में अपराजितसूरि ने कहा है कि महाव्रत का कथन करनेवाले सूत्र इस बात के ज्ञापक हैं कि **आचेलक्य** में वस्त्रादि-समस्तपरिग्रह के त्याग का निर्देश किया गया है—"**किंच महाव्रतोपदेशप्रवृत्तानि च सूत्राणि ज्ञापकानि सर्वसङ्ग-त्यागः आचेलक्कमित्यत्र निर्दिष्ट इत्यस्य।**" (वि.टी./भ.आ./गा.११११८/पृ.५७४)। अर्थात् आचेलक्य के बिना महाव्रत संभव नहीं हैं। भगवती-आराधना में स्त्रीमुक्तिनिषेध का यह दूसरा बलिष्ठ प्रमाण है। आर्यिका उपचार से महाव्रती कहलाती है, परमार्थतः नहीं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२.२. वस्त्रत्याग से ही अपवादलिंगधारी की शुद्धि

अधोनिर्दिष्ट गाथा भी पूर्वोद्धृत है। इससे भी स्त्रीमुक्ति का निषेध होता है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण हेतु यह भी फिर से उद्धृत की जा रही है—

अववादियलिंगकदो विसयासत्तिं अगूहमाणो य।
णिंदणगरहणजुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो॥ ८६॥ भ.आ.।

यह गाथा कहती है कि अपवादलिंगधारी अर्थात् वस्त्रादिपरिग्रहधारी गृहस्थ जब शक्ति को छिपाये बिना अपने सपरिग्रहत्व की निन्दा-गर्हा करता हुआ परिग्रह का त्याग करता है, तब शुद्ध होता है अर्थात् मोक्ष के योग्य बनता है।

स्त्री वस्त्रपरिग्रहात्मक अपवादलिंग का परित्याग कर नहीं सकती, अतः उसमें मोक्षयोग्य शुद्धता का आविर्भाव भी नहीं हो सकता। यह स्त्रीमुक्ति के निषेध का भगवती-आराधना में उपलब्ध तीसरा अकाट्य प्रमाण है।

२.३. पुरुषशरीर ही संयम का हेतु

शिवार्य ने निम्नलिखित गाथाओं में पुरुषशरीर को संयम का साधन बतलाया है और उसकी आकांक्षा को प्रशस्तनिदान कहा है—

संजमहेदुं पुरिसत्त-सत्त-बलविरियसंघडणबुद्धी।
सावअ-बंधुकुलादीणि णिदाणं होदि हु पसत्थं॥ १२१०॥ भ.आ.।

अपराजितसूरि ने इसका खुलासा इस प्रकार किया है—"**संयमनिमित्तं पुरुषत्वमुत्साहः,**[२५] **बलं शरीरगतं दार्ढ्यं, वीर्यं वीर्यान्तराय-क्षयोपशमजः परिणामः, अस्थिबन्धविषया वज्रऋषभ-नाराच-संहननादिः। एतानि पुरुषत्वादीनि संयमसाधनानि मम स्युरिति चित्तप्रणिधानं प्रशस्तनिदानम्।**[२६] **श्रावकबन्धुनिदानम् अदरिद्रकुले अबन्धुकुले वा उत्पत्तिप्रार्थना प्रशस्त-निदानम्।**" (वि.टी./भ.आ./गा.१२१०/पृ.६१४)।

अनुवाद—"पुरुषत्व, उत्साह, शारीरिक दृढ़ता, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न वीर्य-परिणाम, अस्थिबन्धनविशेषरूप-वज्रऋषभनाराचसंहनन आदि संयम के निमित्त हैं। ये पुरुषत्वादि संयम के साधन मुझे प्राप्त हों, चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न होना प्रशस्तनिदान है। तथा मेरा जन्म श्रावककुल में हो, अदरिद्रकुल में हो, तथा बन्धुबान्धवरहित कुल में हो, ऐसी प्रार्थना भी प्रशस्तनिदान है।"

---

२५. सत्तं सत्त्वं = उत्साहः।

२६. तत्थ णिदाणं तिविहं होइ पसत्थापसत्थभोगकदं।
तिविधं पि तं णिदाणं परिपंथो सिद्धिमग्गस्स॥ १२०९॥ भगवती-आराधना।